अंक - ५

सनातन प्रवाह

शिशिर ऋतु अंक । माघ कृष्ण प्रतिपदा । ०४ जनवरी २०२६ । ₹ 51

SANATAN PRAVAH TRUST

सनातन प्रवाह: भारतीय ज्ञान परंपरा की ओर एक सकारात्मक पहल

“सनातन प्रवाह ट्रस्ट” के उद्देश्य एवं लक्ष्य

Tसनातन प्रवाह ट्रस्ट भारतीय आध्यात्मिक परंपराओं के संरक्षण, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व की भावना को प्रोत्साहित करने तथा समाज के समग्र कल्याण को बढ़ावा देने के लिए निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्यों के साथ समर्पित है:

१) पूजा सामग्री का पर्यावरण-सम्मत प्रबंधन

ट्रस्ट प्रयुक्त पूजा सामग्री — जैसे फूल, राख, प्रसाद एवं देवी-देवताओं की मूर्तियों — के सम्मानपूर्वक संग्रह, संचालन और पर्यावरण-अनुकूल निपटान हेतु विशेष सुविधाएँ स्थापित करेगा। ये प्रयास सनातन धर्म की मर्यादाओं एवं पारिस्थितिक नैतिक मूल्यों के अनुरूप होंगे, ताकि कोई भी पवित्र अवशेष अपवित्रता या अपशिष्ट के रूप में न फेंका जाए। इसके अंतर्गत खाद निर्माण, कृत्रिम विसर्जन टैंक, एवं पुनर्चक्रण जैसी विधियाँ अपनाई जाएँगी, जो प्रकृति और अध्यात्म दोनों का सम्मान करती हैं।

२) योग एवं आयुर्वेद का संवर्धन

ट्रस्ट योग और आयुर्वेद — जो शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्पष्टता एवं आत्मिक उत्थान की वैज्ञानिक प्रणालियाँ हैं — के प्रचार, शिक्षण एवं नियमित अभ्यास को प्रोत्साहित करेगा। इसके लिए नियमित कक्षाओं, कार्यशालाओं तथा आत्मसाधना शिविरों का आयोजन किया जाएगा, जिससे जनसामान्य इन्हें अपने जीवन का अभिन्न अंग बना सकें।

३) पारंपरिक अनुष्ठानों और पंचांग परंपरा का पुनरुद्धार

भारतीय चंद्र पंचांग की वैज्ञानिकता एवं अध्यात्मिकता को जन-जन तक पहुँचाने हेतु ट्रस्ट पारंपरिक पर्वों, व्रतों एवं वैदिक अनुष्ठानों के प्रचार और पुनरुद्धार में संलग्न रहेगा। ऐसे शैक्षिक प्रयासों से लोग अपने दैनिक जीवन और पर्वों को प्रकृति की ऋतुओं और ब्रह्मांडीय लय के साथ समरस कर सकें, यही इस उद्देश्य की प्रेरणा है।

४) सांस्कृतिक एवं स्वास्थ्य आधारित सार्वजनिक कार्यक्रमों का आयोजन

ट्रस्ट भारत की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक धरोहर को जनसाधारण तक पहुँचाने हेतु विविध सार्वजनिक आयोजनों — जैसे आध्यात्मिक उत्सव, स्वास्थ्य शिविर, निःशुल्क कार्यशालाएँ और जनजागरूकता अभियान — का आयोजन करेगा, जिससे प्राचीन ज्ञान हर आयु वर्ग के लिए सुलभ और उपयोगी बन सके।

५) दान, अंशदान एवं भेंट की स्वीकृति

ट्रस्ट भारत तथा विदेशों में स्थित व्यक्ति, संस्था, फर्म अथवा संगठन से धनराशि या वस्तु-रूप में दान, अंशदान या भेंट स्वीकार कर सकता है। इन सभी संसाधनों का उपयोग विधिसम्मत रूप से और ट्रस्ट के घोषित आध्यात्मिक एवं सेवा-प्रधान उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाएगा।

६) सार्वजनिक धर्मार्थ स्वरूप

यह ट्रस्ट एक पूर्णतः सार्वजनिक स्वरूप का संस्थान है, जिसकी स्थापना केवल समाज के व्यापक हित और सेवा हेतु की गई है। इसके सभी कार्य और प्रयास जनकल्याण के उद्देश्य से संचालित होंगे, न कि किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए।

शरद ऋतु के त्यौहार और उत्सव

माघ मास के त्यौहार और उत्सव

संकष्टी चतुर्थी व्रत :	माघ, कृष्ण चतुर्थी (06 जनवरी, 2026)
शीतला एकादशी व्रत :	माघ, कृष्ण एकादशी (14 जनवरी, 2026)
वसंत पंचमी :	माघ, शुक्ल पंचमी (23 जनवरी, 2026)
जया एकादशी व्रत :	माघ, शुक्ल एकादशी (29 जनवरी, 2026)

फाल्गुन मास के त्यौहार और उत्सव

संकष्टी चतुर्थी व्रत :	फाल्गुन, कृष्ण चतुर्थी (05 फरवरी, 2026)
विजया एकादशी व्रत :	फाल्गुन, कृष्ण एकादशी (13 फरवरी, 2026)
महाशिवरात्रि :	फाल्गुन, कृष्ण त्रयोदशी (15 फरवरी, 2026)
आंवला एकादशी व्रत :	फाल्गुन, शुक्ल एकादशी (27 फरवरी, 2026)

अनुक्रमणिका

1. भेल संहिता : आयुर्वेद का प्राचीन आधार-ग्रन्थ .... पृष्ठ ०६

2. ऋषियों से आधुनिक युग तक : गोत्र व्यवस्था की यात्रा .... पृष्ठ ०९

3. मण्डल ब्रह्मोपनिषद् : आत्म-साक्षात्कार की एक योगिक दृष्टि .... पृष्ठ १३

4. सभा पर्व : सभापर्व : अहंकार की वृद्धि .... पृष्ठ १७

5. सांख्य दर्शन : मोक्ष का सनातन विज्ञान .... पृष्ठ २१

6. भारतीय ज्योतिष में संक्रांति .... पृष्ठ २४

7. वसंत पंचमी : वसंत, ज्ञान और नवजीवन का उत्सव .... पृष्ठ २८

8. आत्मविश्वास और भय के बीच (गीता ६ से १०).......... पृष्ठ ३१

9. बाइपोलर विकार : .... पृष्ठ ३४

10. ब्लॉकचेन का जादू : डेटा कैसे सुरक्षित रहता है .... पृष्ठ ३८

सनातन विरासत, डिजिटल भारत : २०४७ की ओर अग्रसर भारत

प्रिय पाठकगण,

भारतवर्ष की वास्तविक शक्ति उसकी उस अद्भुत क्षमता में निहित है, जिसके द्वारा वह अपने सनातन ज्ञान-विज्ञान एवं आधुनिक उपलब्धियों का समन्वय करता आया है। प्रस्तुत अंक के विविध विषय इसी सत्य को प्रतिपादित करते हैं। एक ओर आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थ भेल संहिता का आरोग्य-विज्ञान है, तो दूसरी ओर मण्डल ब्रह्मोपनिषद् का दिव्यआध्यात्मिक चिन्तन। सभा पर्व की नीति-शिक्षा तथा सांख्य दर्शन का गूढ़ तात्त्विक विवेचन हमें भारतीय मनीषा की अनुपम गहराइयों का परिचय कराते हैं। संक्रान्ति, वसन्त पंचमी जैसे पर्व तथा गोत्र जैसी सनातन व्यवस्थाएँ इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं कि हमारी संस्कृति सदैव प्रकृति, विज्ञान एवं आत्मचेतना के साथ समन्वित रही है।

वर्तमान युग में मानसिक स्वास्थ्य एक महत्त्वपूर्ण विषय बन गया है। इस अंक में बाइपोलर विकार के माध्यम से इस समस्या पर प्रकाश डाला गया है। यह हमें स्मरण कराता है कि वास्तविक उन्नति केवल भौतिक नहीं, अपितु शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक—तीनों स्तरों पर होनी चाहिए। योग, ध्यान तथा भारतीय जीवन-दर्शन जैसी प्राचीन विधियाँ आधुनिक मनोविज्ञान के साथ मिलकर मानव जीवन को संतुलित एवं सुखमय बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

राष्ट्र के भावी विकास में आधुनिक प्रौद्योगिकी की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ब्लॉकचेन तकनीक ऐसी ही एक नवीन व्यवस्था है, जो पारदर्शिता, सुरक्षा एवं विश्वसनीयता को सुदृढ़ करने की क्षमता रखती है। शासन-प्रशासन, वित्तीय लेन-देन तथा अभिलेखों के संरक्षण में इसका सदुपयोग भ्रष्टाचार की रोकथाम एवं जनकल्याणकारी योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन में सहायक हो सकता है। इससे व्यवस्था अधिक उत्तरदायी तथा जनविश्वास के योग्य बन सकती है।

वर्ष 2047 तक विकसित भारत के संकल्प को साकार करने हेतु आवश्यक है कि हम अपनी सांस्कृतिक जड़ों से दृढ़तापूर्वक जुड़े रहें तथा साथ ही आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विवेकपूर्ण उपयोग करें। शिक्षा ऐसी हो, जिसमें भारतीय ज्ञान-परम्परा एवं नवीन विज्ञान दोनों का समुचित समावेश हो। तभी हम केवल कुशल व्यक्तियों का ही नहीं, अपितु चरित्रवान, उत्तरदायी एवं राष्ट्रनिष्ठ नागरिकों का निर्माण कर सकेंगे।

भारत का उज्ज्वल भविष्य अतीत और वर्तमान में से किसी एक को चुनने में नहीं, बल्कि दोनों के श्रेष्ठ तत्त्वों के सामंजस्य में निहित है। जब सनातन विरासत और आधुनिक नवोन्मेष एक साथ आगे बढ़ेंगे, तभी एक ऐसे भारत का निर्माण होगा जो शक्तिशाली, नैतिक, आत्मनिर्भर एवं विश्वकल्याण के लिए समर्पित होगा।

मुख्य सम्पादक

सनातन प्रवाह

|१|

भेल संहिता : आयुर्वेद का प्राचीन आधार-ग्रन्थ

भारतीय संस्कृति की महानतम देनों में आयुर्वेद का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह केवल रोगों की चिकित्सा का विज्ञान नहीं, अपितु स्वस्थ, दीर्घ एवं संतुलित जीवन का समग्र दर्शन है। मानव जीवन के शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक कल्याण का जो समन्वित स्वरूप आयुर्वेद में प्राप्त होता है, वह विश्व की अन्य चिकित्सा-पद्धतियों में विरल है। आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थों में चरक संहिता, सुश्रुत संहिता तथा अष्टाङ्गहृदयम् का विशेष स्थान है। किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे प्राचीन ग्रन्थ भी हैं, जो यद्यपि अपेक्षाकृत कम चर्चित हैं, तथापि आयुर्वेद के इतिहास एवं विकास को समझने की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। भेल संहिता ऐसा ही एक दुर्लभ एवं बहुमूल्य ग्रन्थ है। यह संहिता आयुर्वेद केप्रारम्भिक स्वरूप का परिचय कराती है तथा हमें यह समझने में सहायता देती है कि प्राचीन भारत में स्वास्थ्य, रोग, आहार, जीवनचर्या और चिकित्सा के विषय में किस प्रकार का चिन्तन विद्यमान था। यद्यपि काल के प्रवाह में इसका बहुत-सा भाग नष्ट हो गया, तथापि उपलब्ध अंश आज भी आयुर्वेद के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की गौरवपूर्ण गाथा सुनाते हैं।

आचार्य भेल का परिचय

भेल संहिता के रचयिता आचार्य भेल आयुर्वेद के प्रतिष्ठित आचार्यों में गिने जाते हैं। वे भगवान् पुनर्वसु आत्रेय के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। आत्रेय ऋषि उस युग के विख्यात चिकित्सक एवं अध्यापक थे, जिनके आश्रम में अनेक प्रतिभाशाली शिष्य आयुर्वेद का अध्ययन करते थे। प्राचीन भारत में शिक्षा गुरुकुल-पद्धति द्वारा प्रदान की जाती थी। शिष्य गुरु के समीप रहकर श्रवण, मनन, चर्चा, निरीक्षण तथा व्यवहारिक अभ्यास के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करते थे। आत्रेय ऋषि की शिक्षाएँ भी इसी परम्परा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित हुईं। आत्रेय के प्रमुख शिष्यों में अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण तथा पराशर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन सभी ने अपने गुरु के उपदेशों को अपने-अपने ढंग सेसंहिताबद्ध किया। भेला संहिता इसी परम्परा की एक अमूल्य कड़ी है।

ऐतिहासिक महत्त्व

विद्वानों के मतानुसार भेल संहिता की रचना लगभग 1000 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व के मध्य हुई। यद्यपि इसका निश्चित काल निर्धारित करना कठिन है, तथापि यह स्पष्ट है कि यह आयुर्वेद के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थों में से एक है।

इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व इसलिए है कि यह आयुर्वेद के विकासशील स्वरूप को प्रस्तुत करता है। इसमें अनेक ऐसे विचार, सिद्धान्त और शब्दावली सुरक्षित हैं, जो बाद के ग्रन्थों में अधिक व्यवस्थित एवं विकसित रूप में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार भेला संहिता आयुर्वेद के इतिहास को समझने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थों में बृहत्त्रयी—चरक संहिता, सुश्रुत संहिता तथा अष्टाङ्गहृदयम्—का सर्वोच्च स्थान है। इनके अतिरिक्त भेल संहिता, हरीत संहिता तथा कश्यप संहिता जैसी प्राचीन संहिताएँ भी आयुर्वेदिक साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।भेल संहिता का सम्बन्ध मुख्यतः आत्रेय-परम्परा से है, जो कायचिकित्सा अर्थात् आन्तरिक रोगों के निदान एवं उपचार पर विशेष बल देती है। यहीकारण है कि इसका चरक संहिता के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाई देता है।

ग्रन्थ की संरचना

भेल संहिता विभिन्न "स्थानों" अथवा विभागों में विभाजित थी। वर्तमान में उपलब्ध अंशों में सूत्रस्थान,

को अनेक रोगों का कारण बताया गया है। मानसिक अशान्ति शरीर को भी प्रभावित करती है और अनेक व्याधियों को जन्म देती है। इस प्रकार आयुर्वेद ने हजारों वर्ष पूर्व ही मन एवं शरीर केपरस्पर सम्बन्ध को पहचान लिया था। ग्रन्थ के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा हेतु आत्मसंयम, सद्विचार, धर्माचरण, सत्संग तथा संतोष आवश्यक हैं। जो मनुष्य अपने मन को वश में रखता है, वह अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों से सुरक्षित रहता है।

चिकित्सा का सिद्धान्त

भेल संहिता का मत है कि प्रत्येक रोगी भिन्न होता है। अतः सभी रोगियों के लिए एक समान उपचार उपयुक्त नहीं हो सकता। वैद्य को रोगी की प्रकृति, आयु, बल, ऋतु, रोग की अवस्था तथा मानसिक स्थिति को ध्यान में रखकर उपचार करना चाहिए। यह व्यक्तिगत चिकित्सा-पद्धति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

औषधियों का स्वरूप

भेल संहिता में मुख्यतः वनस्पति-आधारित औषधियों का वर्णन मिलता है। विभिन्न जड़ी-बूटियों तथा प्राकृतिक पदार्थों का उपयोग रोगों के उपचार हेतु किया जाता था। इनका उद्देश्य केवल रोग को दबाना नहीं, बल्कि शरीर के प्राकृतिक संतुलन को पुनः स्थापित करना था।

वैद्य का आचार-धर्म

भेल संहिता में वैद्य के चरित्र पर विशेष बल दिया गया है। वैद्य को करुणाशील, सत्यनिष्ठ, धैर्यवान तथा लोभ से रहित होना चाहिए। चिकित्सा को केवल व्यवसाय नहीं, बल्कि मानव-सेवा और धर्म का कार्य माना गया है। रोगी की पीड़ा का निवारण ही वैद्य का सर्वोच्च कर्तव्य बताया गया है।

भेल संहिता का पुनः आविर्भाव

दीर्घकाल तक भेल संहिता को लुप्त ग्रन्थ माना जाता रहा। आधुनिक काल में इसकी कुछ प्राचीन पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुईं, जिनके आधार पर विद्वानों ने इसका पुनः सम्पादन एवं प्रकाशन किया। यद्यपि आज भी यह पूर्ण रूप में

उपलब्ध नहीं है, तथापि इसके अवशिष्ट अंश आयुर्वेद के इतिहास की अमूल्य निधि हैं।

आधुनिक युग में प्रासंगिकता

आज का मानव तनाव, अनियमित जीवनचर्या, प्रदूषित वातावरण तथा असंतुलित आहार के कारण अनेक रोगों से ग्रस्त है। ऐसे समय में भेल संहिता का संदेश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यह हमें स्मरण कराती है कि स्वास्थ्य का रहस्य औषधियों में नहीं, बल्कि संतुलित जीवन में निहित है। रोगों की रोकथाम, उचित आहार, मानसिक शान्ति, आत्मसंयमतथा प्रकृति के अनुकूल जीवन—ये सभी शिक्षाएँ आज भी उतनी ही उपयोगी हैं जितनी सहस्रों वर्ष पूर्व थीं।यद्यपि भेल संहिता को चरक संहिता जैसी प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हुई, तथापि इसका ऐतिहासिक एवं वैद्यकीय महत्त्व अत्यन्त महान है। यह आयुर्वेद के प्रारम्भिक स्वरूप, ऋषियों की गहन चिकित्सा-दृष्टि तथा मानव-कल्याण की उनकी उदात्त भावना काजीवंत प्रमाण है। भेला संहिता हमें यह सिखाती है कि स्वास्थ्य का आधार संयमित जीवन, शुद्ध आहार, संतुलित विचार तथा प्रकृति के नियमों के अनुरूप आचरण में निहित है।

आयुर्वेद पर शोध

अमेरिका में National Center for Complementary and Integrative Health (NCCIH) आयुर्वेद पर शोध को समर्थन दे रहा है। वैज्ञानिक अश्वगंधा, हल्दी और अन्य आयुर्वेदिक उपचारों के प्रभावों का अध्ययन मधुमेह, सूजन, तनाव और समग्र स्वास्थ्य पर कर रहे हैं, ताकि उनके लाभों को आधुनिक वैज्ञानिक मानकों से परखा जा सके।

|२|

ऋषियों से आधुनिक युग तक: गोत्र व्यवस्था की ऐतिहासिक यात्रा

भारतीय संस्कृति का समस्त स्वरूप ऋषियों की तपश्चर्या, ज्ञानपरम्परा तथा धर्माधिष्ठित सामाजिक व्यवस्था पर अवलम्बित रहा है। हमारे पूर्वजों ने केवल भौतिक उन्नति को ही जीवन का लक्ष्य नहीं माना, अपितु व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राष्ट्र के समन्वित विकास हेतु अनेक ऐसी व्यवस्थाओं का निर्माण किया, जिनमें आध्यात्मिकता, नैतिकता और लोककल्याण का अद्भुत संगम दृष्टिगोचर होता है। गोत्र व्यवस्था भी ऐसी ही एक प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण संस्था है, जिसने हजारों वर्षों तक भारतीय समाज को संगठित, अनुशासित और संस्कारित बनाये रखने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।वर्तमान समय में गोत्र शब्द प्रायः केवल विवाह-संबन्धी चर्चाओं में सुनने को मिलता है, किन्तु इसका वास्तविक स्वरूप इससे कहीं अधिक व्यापक एवं गम्भीर है। गोत्र केवल किसी कुल अथवा वंश की पहचान नहीं है, अपितु यह भारतीय ऋषि-परम्परा से व्यक्ति के सम्बन्ध का सूचक भी है। यह हमारे आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा पारिवारिक इतिहास का जीवित प्रमाण है।

गोत्र शब्द का अर्थ एवं स्वरूप

'गोत्र' शब्द संस्कृत भाषा का है। व्युत्पत्तिशास्त्र के अनुसार 'गो' शब्द के अनेक अर्थ हैं—गाय, पृथ्वी, इन्द्रिय, प्रकाश तथा ज्ञान। 'त्र' धातु का अर्थ है—रक्षण करना अथवा आश्रय प्रदान करना। प्रारम्भ में गोत्र का प्रयोग उस स्थान के लिये होता था जहाँ गौओं को सुरक्षित रखा जाता था। कालान्तर में इसका अर्थ विस्तृत होकर ऐसे परिवार अथवा वंश के लिये होने लगा, जो किसी एक मूल पुरुष अथवा ऋषि से सम्बद्ध हो। वैदिक साहित्य में गोत्र का अर्थ केवल रक्त-संबन्ध तक सीमित नहीं है। अनेक अवसरों पर यह आध्यात्मिक परम्परा, शिष्य-परम्परा तथा ज्ञान-परम्परा का भी बोध कराता है। यही कारण है कि गोत्र को भारतीय संस्कृति में अत्यन्त सम्मानपूर्वक स्मरण किया जाता है। जब कोई व्यक्ति अपना परिचय देता है और अपने गोत्र का उल्लेख करता है, तब वह केवल अपने परिवार की पहचान नहीं बताता, बल्कि उस महान ऋषि-परम्परा से अपने सम्बन्ध की घोषणा भी करता है, जिसके द्वारा धर्म, ज्ञान और संस्कृति का प्रवाह युगों-युगों तक बना रहा।

वैदिक काल में गोत्र व्यवस्था का उद्भव

गोत्र व्यवस्था की जड़ें वैदिक सभ्यता में निहित हैं। वैदिक युग में समाज का संगठन परिवार, कुल और आश्रम व्यवस्था के आधार पर था। उस समय ज्ञान का प्रसार मुख्यतः श्रुति-परम्परा द्वारा होता था। गुरु अपने शिष्यों को वेद, वेदाङ्ग, यज्ञ-विधि, धर्मशास्त्र तथा जीवनोपयोगी ज्ञान का उपदेश देते थे। ऋषियों के आश्रम केवल शिक्षा के केन्द्र नहीं थे, अपितु वे संस्कृति और धर्म के संरक्षण के भी केन्द्र थे। प्रत्येक ऋषि की अपनी एक विशिष्ट परम्परा थी, जिसमें उनके वंशज, शिष्य और अनुयायी सम्मिलित होते थे। कालान्तर में इन्हीं परम्पराओं ने गोत्र का स्वरूप धारण किया। गोत्र व्यवस्था का उद्देश्य समाज को विभाजित करना नहीं था, बल्कि विभिन्न कुलों और वंशों की पहचान सुरक्षित रखना था, जिससे वंशावली का संरक्षण हो सके तथा विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण संस्कारों में उचित मर्यादा का पालन किया जा सके।

सप्तर्षि और गोत्र परम्परा

भारतीय परम्परा में अनेक गोत्रों का सम्बन्ध सप्तर्षियों से माना जाता है। ये सप्तर्षि केवल महान तपस्वी ही नहीं थे, अपितु वैदिक संस्कृति के प्रमुख आधारस्तम्भ भी थे।

उनके द्वारा स्थापित ज्ञानधारा आज भी भारतीय जीवन में प्रवाहित हो रही है।
सप्तर्षियों के नाम इस प्रकार हैं—

- महर्षि वशिष्ठ
- महर्षि विश्वामित्र
- महर्षि अत्रि
- महर्षि भारद्वाज
- महर्षि गौतम
- महर्षि जमदग्नि
- महर्षि कश्यप

इन ऋषियों ने केवल वेदज्ञान का संरक्षण ही नहीं किया, बल्कि धर्म, दर्शन, योग, आयुर्वेद, खगोल तथा समाज-व्यवस्था के विविध आयामों को भी विकसित किया। उनके नाम पर स्थापित गोत्र आज भी भारत के विभिन्न भागों में विद्यमान हैं। महर्षि कश्यप को अनेक जीव-जातियों तथा मानव समुदायों का आदिपुरुष माना गया है। महर्षि भारद्वाज वैदिकविद्या एवं आयुर्विज्ञान के महान आचार्य थे। महर्षि वशिष्ठ सूर्यवंश के कुलगुरु के रूप में प्रसिद्ध हैं। महर्षि विश्वामित्र ने गायत्री महामन्त्र का लोककल्याणकारी उपदेश दिया। इस प्रकार प्रत्येक गोत्र अपने साथ एक महान आध्यात्मिक विरासत को धारण किये हुए है।

गोत्र व्यवस्था के मूल उद्देश्य

गोत्र व्यवस्था का निर्माण अत्यन्त दूरदर्शिता के साथ किया गया था। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे—

१. वंश परम्परा का संरक्षण

प्राचीन भारत में वंशावली का विशेष महत्त्व था। प्रत्येक परिवार अपने पूर्वजों का स्मरण करता था तथा उनकी परम्पराओं का पालन करता था। गोत्र व्यवस्था ने इस वंशानुक्रम को सुरक्षित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

२. पूर्वजों के प्रति श्रद्धा का संवर्धन

भारतीय संस्कृति में पितृऋण की अवधारणा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति अपने पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये श्राद्ध, तर्पण तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठान करता है। गोत्र व्यक्ति को उसके मूल स्रोत की स्मृति कराता है।

३. विवाह-संबन्धी मर्यादा का संरक्षण

गोत्र व्यवस्था का सबसे व्यावहारिक उद्देश्य निकट सम्बन्धियों के मध्य विवाह को रोकना था। इससे परिवार व्यवस्था की पवित्रता बनी रहती थी तथा समाज में स्वस्थ संतति का विकास सम्भव होता था।

४. सामाजिक संगठन

गोत्र व्यवस्था ने समाज को सुव्यवस्थित ढंग से संगठित करने में सहायता की। इससे विभिन्न कुलों की पहचान बनी रही तथा सामाजिक सम्बन्धों का समुचित संचालन सम्भव हुआ। यह ध्यान रखने योग्य है कि गोत्र का सम्बन्ध मूलतः वंश और परम्परा से है, न कि सामाजिक ऊँच-नीच अथवा विशेषाधिकार से।

गोत्र और जाति : एक आवश्यक भेद

आधुनिक समय में अनेक लोग गोत्र और जाति को एक ही समझ लेते हैं, जबकि दोनों की प्रकृति, उद्देश्य और उत्पत्ति पूर्णतः भिन्न हैं। गोत्र का आधार वंश और ऋषि-परम्परा है। यह बताता है कि व्यक्ति किस ऋषि परम्परा से सम्बद्ध है। इसके विपरीत जाति का सम्बन्ध ऐतिहासिक रूप से व्यवसाय, स्थानीय सामाजिक संगठन तथा सामुदायिक संरचना से रहा है। एक ही गोत्र अनेक जातियों में पाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, कश्यप, भारद्वाज अथवा गौतम गोत्र विभिन्न सामाजिक समुदायों में विद्यमान हैं। इससे स्पष्ट होता है कि गोत्र किसी विशेष जाति की निजी सम्पत्ति नहीं है। वास्तव में गोत्र व्यक्ति की वंश परम्परा का सूचक है, जबकि जाति समाज की एक ऐतिहासिक-सामाजिक व्यवस्था का अंग है। दोनों को एक मानना भारतीय इतिहास और संस्कृति की सही समझ में बाधक बनता है।

समान गोत्र में विवाह निषेध : धर्मशास्त्रीय एवं वैज्ञानिक दृष्टि

भारतीय समाज में गोत्र व्यवस्था का सबसे अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव विवाह-संस्कार में दिखाई देता है। धर्मशास्त्रों में समान गोत्र के स्त्री-पुरुष के मध्य विवाह को सामान्यतः अनुचित माना गया है। इसका आधार केवल सामाजिक परम्परा नहीं, अपितु वंशरक्षा और कुल-मर्यादा की भावना भी है। सनातन धर्म में विवाह केवल दो व्यक्तियों का नहीं, अपितु दो कुलों और दो वंशपरम्पराओं का पवित्र मिलन माना गया है। इसी कारण विवाह के समय वर तथा वधू के गोत्र, प्रवर और वंश का विचार किया जाता है। धर्मशास्त्रों का मत है कि जो स्त्री और पुरुष एक ही ऋषि-परम्परा से सम्बद्ध हों, वे व्यापक अर्थ में एक ही परिवार के सदस्य हैं। अतः उनके मध्य विवाह से बचना चाहिए। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति तथा अन्यधर्मशास्त्रों में सगोत्र विवाह के विषय में विभिन्न नियमों का उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि इन नियमों का पालन विभिन्न प्रदेशों और समुदायों में भिन्न-भिन्न रूपों में हुआ है, तथापि मूल भावना सर्वत्र एक ही रही है—निकट रक्त-संबन्धों के मध्य विवाह को रोकना।

आधुनिक विज्ञान की पुष्टि

आश्चर्य की बात है कि जिन सिद्धान्तों को हमारे ऋषियों ने सहस्रों वर्ष पूर्व सामाजिक व्यवस्था का अंग बनाया था, आधुनिक आनुवंशिकी (Genetics) आज उनके पीछे छिपे वैज्ञानिक आधार की पुष्टि करती है। वैज्ञानिकों के अनुसार यदि निकट आनुवंशिक सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों के मध्य बार-बार विवाह होते रहें तो सन्तानों में कुछ वंशानुगत रोगोंकी सम्भावना बढ़ जाती है। इसके विपरीत भिन्न वंशों और परिवारों के मध्य विवाह आनुवंशिक विविधता को बढ़ाता है, जिससे सन्तति अधिक स्वस्थ एवं सक्षम बनती है। निश्चय ही यह नहीं कहा जा सकता कि आज समान गोत्र के सभी लोग वास्तव में निकट रक्त-संबन्धी हैं, क्योंकि सहस्राब्दियों के दौरान समाज अत्यन्त विस्तृत हो चुका है। तथापि प्राचीनकाल में जब जनसंख्या सीमित थी, तब गोत्र व्यवस्था ने एक प्रभावी सामाजिक सुरक्षा तन्त्र के रूप में कार्य किया। इस प्रकार धर्म और विज्ञान दोनों की दृष्टि से गोत्र व्यवस्था का यह पक्ष अत्यन्त विचारणीय है।

विभिन्न जातियों में समान गोत्र

गोत्र व्यवस्था के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि एक ही गोत्र अनेक जातियों, समुदायों तथा प्रदेशों में पाया जाता है। उदाहरणार्थ कश्यप गोत्र केवल ब्राह्मणों में ही नहीं, अपितु अनेक क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्य समुदायों में भी विद्यमान है। इसी प्रकार भारद्वाज, गौतम, वशिष्ठ और अत्रि गोत्र भी विभिन्न सामाजिक वर्गों में मिलते हैं। यदि गोत्र औरजाति एक ही वस्तु होते, तो ऐसा कभी सम्भव नहीं होता। इससे स्पष्ट होता है कि गोत्र की उत्पत्ति जातिगत विभाजन से पूर्व हुई थी और उसका सम्बन्ध वंशपरम्परा से था, न कि सामाजिक श्रेणीकरण से। भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले लोग, जिनकी भाषा, रीति-रिवाज और सामाजिक परम्पराएँ भिन्न हैं, अनेक बार समान गोत्र के होते हैं। यह तथ्यभारतीय संस्कृति की उस अखण्ड एकता का भी प्रमाण है, जो विविधताओं के भीतर भी विद्यमान रही है।

वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था का वास्तविक स्वरूप

भारतीय समाज के विषय में चर्चा करते समय वर्ण और जाति के विषय को समझना भी आवश्यक है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में समाज के चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—का उल्लेख प्राप्त होता है। इनका उद्देश्य समाज के विभिन्न कार्यों का समुचित विभाजन था।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (4.13) में स्पष्ट कहा है—

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।"

अर्थात् चार वर्णों की रचना गुण और कर्म के आधार पर की गयी है। इस कथन में जन्म का कोई उल्लेख नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रारम्भिक भारतीय चिन्तन में व्यक्ति का मूल्यांकन उसके गुण, स्वभाव, योग्यता और कर्म के आधार पर किया जाता था भारतीय इतिहास में इसके अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। महर्षि विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय थे, किन्तु तप और ज्ञान के बल पर ब्रह्मर्षि पद को प्राप्त हुए। महर्षि वाल्मीकि का जीवन भी यह दर्शाता है कि आध्यात्मिक उत्कर्ष किसी जातिगत सीमा में बँधा हुआ नहीं है। कालान्तर में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के कारण अनेक व्यवसाय

वंशानुगत होते गये। इससे जातीय समूह अधिक स्थिर और कठोर बनते चले गये। किन्तु यह स्थितिमूल वैदिक आदर्श से भिन्न थी। अतः यह समझना आवश्यक है कि—

- गोत्र वंश का सूचक है।
- वर्ण गुण और कर्म पर आधारित सामाजिक दायित्व का संकेतक है।
- जाति ऐतिहासिक विकास की उपज सामाजिक संस्था है।

इन तीनों को एक-दूसरे का पर्याय मान लेना अनेक भ्रमों को जन्म देता है।

गोत्र और भारतीय सांस्कृतिक एकता

भारत की सांस्कृतिक शक्ति का एक प्रमुख आधार उसकी ऋषि-परम्परा रही है। गोत्र व्यवस्था इस परम्परा को पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रखने का माध्यम बनी। जब कोई व्यक्ति अपना गोत्र बताता है, तब वह अनजाने ही उस महान ऋषि को स्मरण करता है, जिसके ज्ञान, तप और त्याग ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाया। इस प्रकार गोत्र केवल पारिवारिक पहचान नहीं, अपितु सांस्कृतिक स्मृति का भी आधार है। विभिन्न प्रदेशों, भाषाओं और समुदायों में रहने वाले करोड़ों भारतीय आज भी अपने गोत्र के माध्यम से उन प्राचीन ऋषियों से जुड़े हुए हैं, जिन्होंने वेदों का संरक्षण किया, धर्म का प्रकाश फैलाया और मानवता को उच्च आदर्श प्रदान किये।

आधुनिक युग में गोत्र व्यवस्था की प्रासंगिकता

आज का युग विज्ञान, प्रौद्योगिकी और वैश्वीकरण का युग है। अनेक लोग प्रश्न करते हैं कि क्या गोत्र व्यवस्था काआज भी कोई महत्त्व है? इस प्रश्न का उत्तर समझदारी से दिया जाना चाहिए। गोत्र व्यवस्था का उद्देश्य कभी सामाजिक भेदभाव उत्पन्न करना नहीं था। इसका वास्तविक प्रयोजन वंशावली का संरक्षण, विवाह-संबन्धी मर्यादा तथा सांस्कृतिक निरन्तरता था। यदि इन मूल उद्देश्यों को समझा जाए, तो आज भी गोत्र का महत्त्व बना हुआ है। आधुनिक युग में गोत्र—

- परिवार के इतिहास को समझने में सहायक है।
- वंशावली अनुसंधान का आधार प्रदान करता है।
- सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखता है।
- भारतीय ऋषि-परम्परा से सम्बन्ध स्थापित करता है।

किन्तु इसके साथ यह भी आवश्यक है कि गोत्र के नाम पर किसी प्रकार का अहंकार, भेदभाव अथवा सामाजिक वैमनस्य न उत्पन्न हो। ऋषियों की परम्परा का वास्तविक सम्मान तभी है, जब हम उनके द्वारा प्रतिपादित सत्य, करुणा, समता और धर्म के आदर्शों को भी अपनाएँ।

गोत्र व्यवस्था भारतीय संस्कृति की उन अमूल्य धरोहरों में से है, जिनकी जड़ें वैदिक सभ्यता की गहराइयों तक पहुँचती हैं। इसका उद्भव समाज को विभाजित करने के लिये नहीं, बल्कि वंशपरम्परा के संरक्षण, विवाह-संस्कार की मर्यादा तथा सांस्कृतिक एकता की स्थापना के लिये हुआ था। सप्तर्षियों से प्रारम्भ हुई यह परम्परा आज भी करोड़ों भारतीयों केजीवन में विद्यमान है। गोत्र हमें यह स्मरण कराता है कि हम केवल किसी परिवार के सदस्य नहीं हैं, बल्कि एक महान ऋषि-परम्परा के उत्तराधिकारी भी हैं। वास्तव में गोत्र व्यवस्था भारतीय सभ्यता की उस दूरदर्शिता का परिचायक है, जिसमें धर्म, समाज, विज्ञान और संस्कृति का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। यदि इसके वास्तविक स्वरूप को समझा जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि गोत्र केवल एक नाम नहीं, अपितु भारतीय आत्मा का एक जीवित इतिहास है—एक ऐसी अमर परम्परा, जो ऋषियों से प्रारम्भ होकर आज भी हमारी सांस्कृतिक चेतना को आलोकित कर रही है।

भक्ति बिना न सुख मिले, न मिटे मन का शोक।
नारद कहते प्रेम से, मिलता हरि का लोक॥

|३|

मण्डल ब्रह्मोपनिषद् : आत्मसाक्षात्कार और ब्रह्मानुभूति की योगिक यात्रा

भारतीय अध्यात्म-साहित्य का आधार वेद, उपनिषद्, गीता तथा ऋषियों की अनुभूतिपरक ज्ञान परम्परा है। उपनिषद् साहित्य में जहाँ कुछ ग्रन्थ अपने दार्शनिक गाम्भीर्य के कारण विशेष प्रसिद्ध हुए हैं, वहीं अनेक ऐसे उपनिषद् भी हैं जो अपेक्षाकृत कम परिचित होने पर भी साधना और आत्मानुभूति की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। मण्डल ब्रह्मोपनिषद् ऐसाही एक विलक्षण ग्रन्थ है। यह उपनिषद् योग, वेदान्त और आत्मविद्या का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करती है। इसमें साधक को केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही नहीं दिया गया, अपितु उस ज्ञान को प्रत्यक्ष अनुभूति में परिणत करने की साधना-पद्धति का भी निरूपण किया गया है। इस दृष्टि से मण्डल ब्रह्मोपनिषद् केवल दार्शनिक ग्रन्थ नहीं, अपितु साधना काव्यावहारिक मार्गदर्शक भी है। अथर्ववेद से सम्बद्ध यह उपनिषद् योगोपनिषदों की परम्परा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें वर्णित शिक्षाएँ साधक को बाह्य जगत् की चञ्चलता से हटाकर अन्तःकरण की गहराइयों में प्रवेश कराती हैं, जहाँ आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता का प्रत्यक्ष अनुभव सम्भव होता है।

नाम का आध्यात्मिक रहस्य

'मण्डल ब्रह्मोपनिषद्' नाम अपने भीतर ही गहन आध्यात्मिक संकेत समेटे हुए है। 'मण्डल' का सामान्य अर्थ है—वृत्त, चक्र, क्षेत्र अथवा पूर्णता का प्रतीक। भारतीय दर्शन में मण्डल केवल ज्यामितीय आकृति नहीं है, बल्कि सृष्टि की समग्र व्यवस्था, चेतना का विस्तार तथा आध्यात्मिक ऊर्जा के केन्द्र का द्योतक है। 'ब्रह्म' का तात्पर्य उस परम तत्त्व से है जोअनन्त, अविनाशी, सर्वव्यापक और समस्त जगत् का आधार है। 'उपनिषद्' का अर्थ है—वह ज्ञान जो साधक को अज्ञान से मुक्त कर परम सत्य के समीप ले जाए। इस प्रकार मण्डल ब्रह्मोपनिषद् का अभिप्राय उस दिव्य शिक्षा परम्परा से है, जिसके द्वारा साधक चेतना के आन्तरिक मण्डल में प्रवेश कर ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार करता है।

अथर्ववैदिक परम्परा और उपनिषद् का स्थान

मण्डल ब्रह्मोपनिषद् अथर्ववेद की परम्परा से सम्बद्ध मानी जाती है। अथर्ववेद अन्य वेदों की अपेक्षा अधिक रहस्यप्रधान एवं अन्तर्मुखी माना गया है। इसमें केवल यज्ञ-विधि ही नहीं, बल्कि मन, प्राण, चिकित्सा, ध्यान तथा आध्यात्मिक साधना से सम्बन्धित अनेक सूक्ष्म विषयों का विवेचन मिलता है। योगतत्त्वोपनिषद्, हंसोपनिषद्, अमृतबिन्दूपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद् तथा ध्यानबिन्दूपनिषद् आदि की भाँति मण्डल ब्रह्मोपनिषद् भी साधना-प्रधान उपनिषदों में गिनी जाती है। इन उपनिषदों की विशेषता यह है कि वे वेदान्त के उच्चतम सिद्धान्तों को योग की व्यावहारिक साधना के साथ जोड़ती हैं। यहाँ ब्रह्मज्ञान केवल बौद्धिक चिन्तन का विषय नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभूति का लक्ष्य है।

गुरु और शिष्य का दिव्य संवाद

उपनिषदों की परम्परा सदैव संवादात्मक रही है। ज्ञान का संचार केवल पुस्तकों द्वारा नहीं, बल्कि गुरु के सजीव सान्निध्य में होता था। मण्डल ब्रह्मोपनिषद् में भी एक जिज्ञासु साधक गुरु के समक्ष उपस्थित होकर प्रश्न करता है—"परम सत्य क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है? बन्धन से मुक्ति कैसे प्राप्त होती है?" गुरु उत्तर देते हैं कि केवल कर्मकाण्ड, व्रत, उपवास अथवा बाह्य आडम्बर से मोक्ष प्राप्त नहीं होता। जब तक मन वासनाओं से मुक्त

नहीं होता और आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता, तब तक वास्तविक मुक्ति सम्भव नहीं है। यह शिक्षा मुण्डकोपनिषद् की उस घोषणा की स्मृति कराती है— "परिक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्।" अर्थात् कर्मजन्य फलों की सीमितता को समझकरविवेकी पुरुष उच्चतर ज्ञान की खोज करता है।

मण्डल की आध्यात्मिक अवधारणा

इस उपनिषद् का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विषय 'मण्डल' है। यहाँ मण्डल का अर्थ केवल बाह्य ब्रह्माण्ड नहीं है। उपनिषद् के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक विराट् मण्डल है और मानव शरीर उसका सूक्ष्म प्रतिबिम्ब। भारतीय दर्शन का प्रसिद्ध सिद्धान्त है— "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे।" अर्थात् जो कुछ इस शरीर में है, वही व्यापक रूप में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेंविद्यमान है। मनुष्य का शरीर, प्राण, मन, बुद्धि तथा चेतना—ये सब मिलकर एक सूक्ष्म मण्डल का निर्माण करते हैं। जो साधक इस आन्तरिक मण्डल को जान लेता है, वह समस्त सृष्टि के रहस्य को समझने में समर्थ हो जाता है। यहाँ बाह्य ब्रह्माण्ड की खोज से अधिक महत्त्व अन्तःचेतना की यात्रा को दिया गया है।

चेतना की चार अवस्थाएँ

मण्डल ब्रह्मोपनिषद् चेतना के रहस्य का विवेचन करते हुए मानव अनुभव की चार अवस्थाओं का वर्णन करती है।

१. जाग्रत अवस्था

यह वह अवस्था है जिसमें मनुष्य इन्द्रियों के माध्यम से बाह्य जगत् का अनुभव करता है। रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श का ज्ञान इसी अवस्था में होता है। किन्तु उपनिषद् बताती है कि यह सम्पूर्ण अनुभव परिवर्तनशील है और स्थायी सत्य नहीं है।

२. स्वप्न अवस्था

जब इन्द्रियाँ विश्राम करती हैं तब मन अपने ही संस्कारों और कल्पनाओं से एक नया जगत् रचता है। स्वप्न में दिखाई देने वाली वस्तुएँ बाह्य नहीं होतीं, फिर भी अनुभव वास्तविक प्रतीत होता है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि अनुभूति की सत्यता का आधार केवल इन्द्रियज्ञान नहीं है।

३. सुषुप्ति अवस्था

गहन निद्रा में न बाह्य जगत् का ज्ञान रहता है और न स्वप्नों का। वहाँ एक प्रकार की शान्ति रहती है, किन्तु साथ ही अज्ञान भी विद्यमान रहता है। जागने पर व्यक्ति कहता है —"मैं सुख से सोया था, मुझे कुछ ज्ञात नहीं हुआ।" अर्थात् वहाँ अनुभव तो था, किन्तु ज्ञान नहीं था।

४. तुरीय अवस्था

यह उपनिषद् की शिक्षाओं का केन्द्रबिन्दु है। तुरीय न जाग्रत है, न स्वप्न और न सुषुप्ति। यह उन सबका आधार है। यह शुद्ध चेतना की अवस्था है, जहाँ आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित होती है। तुरीय में पहुँचकर साधक अनुभव करता है कि वह शरीर, मन और बुद्धि से परे शुद्ध चैतन्य है। इसी को आत्मसाक्षात्कार कहा गया है।

योग : आत्मज्ञान का साधन

मण्डल ब्रह्मोपनिषद् स्पष्ट करती है कि आत्मज्ञान केवल तर्क या वाद-विवाद से प्राप्त नहीं होता। उसके लिये योग आवश्यक है। योग का अर्थ यहाँ केवल शारीरिक व्यायाम नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जीवन का अनुशासन है। योग साधक को बाह्य चञ्चलता से हटाकर अन्तर्मुखी बनाता है और अन्ततः उसे ब्रह्मानुभूति तक पहुँचाता है। उपनिषद् के अनुसार योग काप्रथम चरण है—चित्तशुद्धि। जब तक मन काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से मुक्त नहीं होता, तब तक उच्चतर अनुभूति सम्भव नहीं होती। इसीलिए योग का प्रारम्भ नैतिक अनुशासन से होता है।

यम और नियम : साधना की आधारशिला

मण्डल ब्रह्मोपनिषद् में योग को केवल शारीरिक अभ्यास नहीं माना गया है, अपितु उसे आत्मशुद्धि की एक समग्र प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रक्रिया का प्रथम चरण है — यम और नियम। यम का तात्पर्य उन

सद्गुणों से है जो मनुष्य के व्यवहार को पवित्र बनाते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह इनके प्रमुख अंग हैं। जो साधककिसी भी प्राणी के प्रति हिंसा का भाव नहीं रखता, सत्य का पालन करता है, दूसरों की वस्तु पर अधिकार नहीं चाहता, इन्द्रियों को संयमित रखता है तथा अनावश्यक संग्रह से दूर रहता है, वही योगमार्ग का अधिकारी बनता है। इसी प्रकार शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान नियम के अन्तर्गत आते हैं। इनका उद्देश्य अन्तःकरण को निर्मलबनाना है। उपनिषद् का संकेत है कि जिस प्रकार गन्दे पात्र में अमृत नहीं रखा जा सकता, उसी प्रकार अशुद्ध मन में आत्मज्ञान का प्रकाश स्थिर नहीं रह सकता। अतः नैतिक पवित्रता ही आध्यात्मिक उन्नति का प्रथम सोपान है।

आसन और शरीर की स्थिरता

आधुनिक समय में योग को प्रायः आसनों तक सीमित कर दिया गया है, किन्तु मण्डल ब्रह्मोपनिषद् आसन का उद्देश्य कहीं अधिक गम्भीर बताती है। आसन का प्रयोजन शरीर को स्वस्थ और स्थिर बनाना है ताकि साधक लम्बे समय तक ध्यान में स्थित रह सके। चञ्चल शरीर चञ्चल मन को जन्म देता है, जबकि स्थिर शरीर मन की एकाग्रता में सहायक होताहै। ऋषियों ने शरीर को साधना का उपकरण माना है। यह न तो उपेक्षा का विषय है और न ही आसक्ति का। इसका उचित संरक्षण और संयमित उपयोग ही योग का मार्ग है।

प्राणायाम : प्राणशक्ति का विज्ञान

मण्डल ब्रह्मोपनिषद् में प्राणायाम को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। उपनिषद् के अनुसार प्राण ही शरीर और मन के मध्य सेतु है। जब प्राण अस्थिर होता है तब मन भी अस्थिर रहता है; और जब प्राण संयमित हो जाता है तब मन स्वतः शान्त होने लगता है। भारतीय योगशास्त्र में प्राण को केवल श्वास नहीं माना गया, बल्कि जीवन की मूल शक्ति समझा गयाहै। यही शक्ति शरीर की समस्त क्रियाओं का संचालन करती है। उपनिषद् बताती है कि नियमित प्राणायाम से नाड़ियों की शुद्धि होती है, चित्त की विक्षिप्तता घटती है और साधक ध्यान के योग्य बनता है। जिस प्रकार तीव्र वायु से दीपक की लौ डगमगाने लगती है, उसी प्रकार असंयमित प्राण मन को चञ्चल बनाता है। किन्तु जब प्राण स्थिर हो जाता है तबचेतना का प्रकाश अविचल रूप से प्रकाशित होने लगता है।

धारणा, ध्यान और समाधि

योग का अगला चरण है—धारणा। धारणा का अर्थ है मन को किसी एक बिन्दु पर स्थिर करना। सामान्यतः मन विषयों की ओर भागता रहता है, किन्तु साधना के द्वारा उसे एकाग्र बनाया जाता है। जब यह एकाग्रता निरन्तर प्रवाहित होने लगती है तब उसे ध्यान कहा जाता है। ध्यान में साधक बाह्य जगत् को भूलकर अपने अन्तःकरण में स्थित चैतन्य काअवलोकन करता है। धीरे-धीरे विचारों की गति क्षीण होने लगती है और मन गहन शान्ति का अनुभव करता है। जब ध्यान पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त करता है, तब समाधि की अवस्था आती है। समाधि में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद समाप्त हो जाता है। वहाँ साधक अनुभव करता है कि जिस सत्य को वह बाहर खोज रहा था, वही उसके अपने अस्तित्व काआधार है। यही वह अवस्था है जहाँ जीव और ब्रह्म की एकता का प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

ब्रह्म का स्वरूप

मण्डल ब्रह्मोपनिषद् का दार्शनिक केन्द्र ब्रह्म का स्वरूप है। उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म—

- निर्गुण है,
- निर्विकार है,
- नित्य है,
- सर्वव्यापक है,
- अविनाशी है,
- शुद्ध चैतन्यस्वरूप है।

वह न जन्म लेता है और न नष्ट होता है। समस्त नाम और रूप उसी में प्रकट होते हैं और अन्ततः उसी में लीन हो जाते हैं।उपनिषद् का मत है कि ब्रह्म किसी दूरस्थ लोक में स्थित नहीं है। वह प्रत्येक जीव के हृदय में विद्यमान है। अज्ञान के कारण मनुष्य उसे पहचान नहीं पाता। जब

अज्ञान का आवरण हटता है तब साधक अनुभव करता है — "अहं ब्रह्मास्मि।"अर्थात् मैं सीमित शरीर नहीं, अपितु वही अनन्त ब्रह्मस्वरूप चैतन्य हूँ। यह अनुभूति केवल बौद्धिक निष्कर्ष नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अनुभव है।

गुरु का महत्त्व

उपनिषद् परम्परा में गुरु का स्थान सर्वोच्च माना गया है। मण्डल ब्रह्मोपनिषद् भी इस सिद्धान्त की पुष्टि करती है। शास्त्र मार्ग दिखा सकते हैं, किन्तु मार्ग पर चलने की प्रेरणा और दिशा गुरु ही प्रदान करते हैं। गुरु वह है जिसने सत्य का अनुभव किया हो और जो साधक को भी उसी सत्य की ओर अग्रसर कर सके। मुण्डकोपनिषद् का प्रसिद्ध वचन है—"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।" अर्थात् ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये गुरु के पास जाना चाहिए। गुरु केवल उपदेशक नहीं होता; वह साधक के अन्तःकरण में सुप्त आध्यात्मिक शक्ति को जागृत करने वाला मार्गदर्शक होता है। उसकी कृपा और निर्देशन से साधना का मार्ग सरल एवं सुरक्षित बनता है।

वास्तविक संन्यास और त्याग

मण्डल ब्रह्मोपनिषद् बाह्य त्याग की अपेक्षा आन्तरिक त्याग को अधिक महत्त्व देती है। केवल वस्त्र बदल लेने, वन में चले जाने अथवा सामाजिक जीवन का परित्याग कर देने से मुक्ति नहीं मिलती। यदि मन में अहंकार, लोभ और वासनाएँ विद्यमान हैं तो बाह्य संन्यास भी अधूरा है।
सच्चा त्याग है—

- अहंकार का त्याग,
- ममता का त्याग,
- आसक्ति का त्याग,
- देहाभिमान का त्याग।

जो व्यक्ति संसार में रहते हुए भी अनासक्त रहता है, वही वास्तविक संन्यासी है। यह शिक्षा भगवद्गीता के कर्मयोग सिद्धान्त के अत्यन्त समीप है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कर्म का त्याग नहीं, बल्कि कर्मफल की आसक्ति के त्याग को श्रेष्ठ बताया है।

जीवनमुक्ति का आदर्श

मण्डल ब्रह्मोपनिषद् की एक विशिष्ट शिक्षा जीवनमुक्ति का सिद्धान्त है। सामान्य धारणा यह है कि मुक्ति मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होती है, किन्तु उपनिषद् बताती है कि मनुष्य जीवित रहते हुए भी मुक्त हो सकता है। जिसने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है, वह जीवनमुक्त कहलाता है। ऐसे महापुरुष की विशेषताएँ हैं—

- वह भय से मुक्त होता है।
- उसे किसी वस्तु की प्राप्ति या अप्राप्ति से हर्ष-विषाद नहीं होता।
- वह समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा का दर्शन करता है।
- उसके भीतर द्वेष, ईर्ष्या और अहंकार का स्थान नहीं रहता।

वह संसार में रहता है, कार्य करता है, लोगों से व्यवहार करता है, किन्तु भीतर से पूर्णतया मुक्त और अनासक्त रहता है। उपनिषद् के अनुसार यही मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है।

आधुनिक युग में मण्डल ब्रह्मोपनिषद् की प्रासंगिकता

वर्तमान युग भौतिक उन्नति का युग है, किन्तु इसके साथ-साथ मानसिक अशान्ति, तनाव, भय और असन्तोष भी बढ़ रहे हैं। मनुष्य के पास साधन तो बहुत हैं, किन्तु शान्ति का अभाव है। ऐसी स्थिति में मण्डल ब्रह्मोपनिषद् की शिक्षाएँ अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। यह उपनिषद् हमें स्मरण कराती है कि बाह्य उपलब्धियाँ जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं हैं। वास्तविक आनन्द भीतर स्थित आत्मा के साक्षात्कार में है। योग, ध्यान, प्राणायाम, नैतिक जीवन और आत्मचिन्तन—ये केवल प्राचीन साधनाएँ नहीं हैं, बल्कि आज भी मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के प्रभावी साधन हैं। उपनिषद् का सन्देश है कि मनुष्य अपने भीतर स्थित दिव्यता को पहचाने और बाह्य चञ्चलता से ऊपर उठकर आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो।

|४|

सभापर्व : अहंकार की वृद्धि और धर्म की पराजय का प्रारम्भ

महर्षि वेदव्यासकृत महाभारत केवल एक ऐतिहासिक आख्यान अथवा राजवंशों के संघर्ष का वृत्तान्त नहीं है, अपितु यह मानव-जीवन, धर्म, नीति, कर्तव्य तथा कर्मफल का महान् विश्वकोश है। इसके प्रत्येक पर्व में जीवन के किसी न किसी गहन सत्य का उद्घाटन हुआ है। आदिपर्व के उपरान्त महाभारत का द्वितीय पर्व 'सभापर्व' आता है, जो सम्पूर्ण महाभारतकी कथा में अत्यन्त निर्णायक स्थान रखता है। 'सभा' शब्द का अर्थ है—राजसभा, परिषद् अथवा वह स्थान जहाँ राज्य के महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये जाते हैं। किन्तु महाभारत का सभापर्व केवल राजसभाओं का वर्णन नहीं है; यह मानव-हृदय में उत्पन्न होने वाले अहंकार, ईर्ष्या, लोभ और अधर्म की उस यात्रा का चित्रण है, जो अन्ततः सम्पूर्ण कुरुवंश के विनाशका कारण बनती है। यदि आदिपर्व महाभारत की भूमिका है, तो सभापर्व उसके महान् संघर्ष का बीजारोपण है। इसी पर्व में वे घटनाएँ घटित होती हैं, जिनके परिणामस्वरूप पाण्डवों का वनवास, द्रौपदी का अपमान और अन्ततः कुरुक्षेत्र का महायुद्ध अनिवार्य हो जाता है।

सभापर्व का महत्त्व

सभापर्व महाभारत का वह दर्पण है जिसमें मानव स्वभाव की दुर्बलताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। यहाँ धर्म और अधर्म का संघर्ष तलवारों से नहीं, बल्कि विचारों, निर्णयों और चरित्र की कसौटी पर होता है। यह पर्व हमें बताता है कि किसी राज्य का पतन बाहरी शत्रुओं से नहीं, बल्कि भीतर उत्पन्न होने वाले दोषों से आरम्भ होता है। दुर्योधन की ईर्ष्या, शकुनि की कुटिलता, धृतराष्ट्र की पुत्र-मोहजनित दुर्बलता और सभा में बैठे महापुरुषों का मौन—ये सभी मिलकर उस विनाशकारी परिस्थिति को जन्म देते हैं जो आगे चलकर महाभारत युद्ध का कारण बनती है। सभापर्व का सबसे बड़ा संदेश यह है कि अधर्म का आरम्भ प्रायः सूक्ष्म रूप में होता है, किन्तु यदि समय रहते उसे रोका न जाए तो वह सम्पूर्ण समाज को अपनीचपेट में ले लेता है।

मायासभा का निर्माण

खाण्डववन-दहन के उपरान्त मय नामक दानव-शिल्पी अर्जुन और श्रीकृष्ण के उपकार से प्रसन्न हुआ। उसने पाण्डवों के लिये एक अद्भुत राजसभा का निर्माण किया, जिसे 'मायासभा' कहा गया। यह सभा अपनी भव्यता, कलात्मकता और विलक्षण स्थापत्य के कारण अद्वितीय थी। उसमें ऐसे अनेक दृश्य उपस्थित थे जो देखने वालों को आश्चर्यचकित कर देते थे। कहीं जल भूमि के समान प्रतीत होता था और कहीं भूमि जल के समान दिखाई देती थी। कहीं द्वार दिखाई देता था परन्तु वास्तव में वहाँ दीवार होती थी, और कहीं दीवार प्रतीत होती थी परन्तु वहाँ मार्ग होता था। यह सभा केवल वास्तुकला का चमत्कार नहीं थी, बल्कि पाण्डवों की बढ़ती हुई समृद्धि और वैभव का प्रतीक भी थी।

दुर्योधन की ईर्ष्या

जब दुर्योधन मायासभा को देखने के लिये इन्द्रप्रस्थ आया, तब उसने पाण्डवों की समृद्धि, सम्मान और वैभव को निकट से देखा। सभा के विचित्र निर्माण के कारण वह अनेक बार भ्रमित हुआ। एक स्थान पर उसने जल को भूमि समझकर उसमें पैर रख दिया और दूसरी ओर भूमि को जल समझकर वस्त्र उठा लिये। इस पर उपस्थित लोगों में हास्य उत्पन्न हुआ।महाभारत के अनेक संस्करणों

में वर्णित है कि इस घटना से दुर्योधन अत्यन्त अपमानित अनुभव करने लगा। उसके मन में पहले से विद्यमान ईर्ष्या अब द्वेष का रूप धारण कर चुकी थी। वह यह सहन नहीं कर पा रहा था कि जिन पाण्डवों को वह अपने प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखता था, वे उससे अधिक प्रतिष्ठित और समृद्ध हो गये हैं। यहीं से उस विनाशकारी ईर्ष्याका आरम्भ होता है जो आगे चलकर सम्पूर्ण कुरुवंश को संकट में डाल देती है।

राजसूय यज्ञ और युधिष्ठिर का सम्राट पद

धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने का निश्चय किया। यह यज्ञ केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं था, बल्कि सम्पूर्ण आर्यावर्त में सार्वभौम सत्ता की घोषणा का प्रतीक था। श्रीकृष्ण, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर तथा अनेक महान् राजा इस यज्ञ में उपस्थित हुए। यज्ञ की सफलता के साथ युधिष्ठिर को सम्राट के रूप में स्वीकार किया गया। सभा में यह प्रश्न उठा कि प्रथम पूजन का अधिकारी कौन है? पितामह भीष्म ने घोषणा की कि सम्पूर्ण सभा में श्रीकृष्ण से बढ़कर कोई पूज्य नहीं है। अतः अग्रपूजा उन्हीं की होनी चाहिए। यह निर्णय धर्म और सत्य के अनुरूप था, किन्तु चेदिराज शिशुपाल इसे सहन न कर सका।

शिशुपाल-वध

शिशुपाल बचपन से ही श्रीकृष्ण के प्रति द्वेष रखता था। राजसूय यज्ञ की सभा में उसने श्रीकृष्ण, भीष्म तथा अन्य महापुरुषों का अपमान करना आरम्भ कर दिया। श्रीकृष्ण ने उसकी अनेक भूलों को क्षमा किया, क्योंकि उन्होंने पूर्व में उसकी माता को सौ अपराधों तक क्षमा करने का वचन दिया था। किन्तु जब उसकी मर्यादा-भंग की सीमा पूर्ण हो गयी, तबभगवान् ने सुदर्शन चक्र का प्रयोग कर उसका वध कर दिया। यह घटना स्पष्ट करती है कि सहनशीलता और क्षमा धर्म के गुण हैं, किन्तु जब अधर्म सीमा का उल्लंघन कर देता है, तब उसका दमन भी आवश्यक हो जाता है।शिशुपाल-वध धर्म की रक्षा और अधर्म के विनाश का प्रतीक है।

ईर्ष्या से षड्यंत्र तक

राजसूय यज्ञ की सफलता और पाण्डवों की प्रतिष्ठा देखकर दुर्योधन का हृदय जलने लगा। हस्तिनापुर लौटकर वह उदास और चिन्तित रहने लगा। उसकी इस अवस्था को देखकर उसके मामा शकुनि ने कारण पूछा। दुर्योधन ने स्वीकार किया कि वह पाण्डवों की समृद्धि को सहन नहीं कर पा रहा। तब शकुनि ने कहा कि युद्ध में पाण्डवों को पराजित करनाकठिन है, किन्तु छल और कूटनीति के माध्यम से उन्हें परास्त किया जा सकता है। यहीं से द्यूत-क्रीड़ा की योजना बनती है। यह प्रसंग हमें सिखाता है कि ईर्ष्या जब विवेक को नष्ट कर देती है, तब मनुष्य धर्म और न्याय की सीमाएँ लाँघने लगता है।

धृतराष्ट्र की दुर्बलता

विदुर ने धृतराष्ट्र को अनेक बार सावधान किया कि द्यूत-क्रीड़ा अनर्थ का कारण बनेगी। उन्होंने स्पष्ट कहा कि यह योजना कुरुवंश के लिये घातक सिद्ध होगी। किन्तु धृतराष्ट्र अपने पुत्र-मोह से मुक्त न हो सके। वे जानते थे कि दुर्योधन का मार्ग अनुचित है, फिर भी उन्होंने उसे रोकने का साहस नहीं किया। यहीं महाभारत का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नैतिक संदेश निहित है— केवल दुष्ट व्यक्ति ही विनाश का कारण नहीं बनते, अपितु वे लोग भी उतने ही उत्तरदायी होते हैं जो सत्य जानते हुए भी मौन बने रहते हैं। धृतराष्ट्र का यह दुर्बल मौन आगे चलकर समस्त कुरुवंश के लिये विनाशकारी सिद्ध होता है।

द्यूत-क्रीड़ा का आरम्भ

दुर्योधन और शकुनि की योजना के अनुसार धृतराष्ट्र ने धर्मराज युधिष्ठिर को हस्तिनापुर की सभा में आमन्त्रित किया। क्षत्रिय-परम्परा के अनुसार राजसभा के निमन्त्रण को अस्वीकार करना उचित नहीं माना जाता था। साथ ही, युधिष्ठिर द्यूत-क्रीड़ा के दोषों को जानते हुए भी उसके प्रति एक प्रकार की दुर्बलता रखते थे। विदुर ने युधिष्ठिर को संकेत दिया किइस आमन्त्रण के पीछे शुभ भावना नहीं है, किन्तु धर्मराज ने इसे राजाज्ञा मानकर स्वीकार कर लिया। सभा में शकुनि दुर्योधन की ओर से पासे फेंकने लगा। वह द्यूत-क्रीड़ा में अत्यन्त चतुर था तथा कपटपूर्ण उपायों का

उपयोग करता था। युधिष्ठिर सरल स्वभाव के थे; वे छल-कपट की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। द्यूत आरम्भ हुआ और धीरे-धीरे धर्मराजअपना धन, स्वर्ण, रत्न, हाथी, घोड़े और सम्पूर्ण राज्य हारते चले गये। किन्तु दुर्भाग्यवश वे यहीं नहीं रुके।उन्होंने क्रमशः अपने भाइयों को दाँव पर लगाया और उन्हें भी हार गये। इसके पश्चात् स्वयं को दाँव पर लगाया और स्वयं को भी हार बैठे। यह प्रसंग मानव-जीवन की एक बड़ी शिक्षा देता है कि जब विवेक नष्ट हो जाता है, तब श्रेष्ठतम व्यक्ति भी ऐसे निर्णय कर बैठता है जिनका परिणाम अत्यन्त विनाशकारी होता है।

द्रौपदी को दाँव पर लगाना

स्वयं को हार जाने के उपरान्त भी युधिष्ठिर की बुद्धि मोहग्रस्त बनी रही। शकुनि के उकसाने पर उन्होंने महारानी द्रौपदी को दाँव पर लगा दिया। यह सुनकर सभा में उपस्थित अनेक महापुरुषों के हृदय काँप उठे। किन्तु किसी ने भी तत्काल इसका विरोध करने का साहस नहीं किया। जब शकुनि ने घोषणा की कि द्रौपदी भी हार गयी हैं, तब दुर्योधन ने उन्हें सभामें लाने का आदेश दिया। उस समय द्रौपदी राजमहल में थीं। जब उन्हें यह समाचार मिला तो उन्होंने एक अत्यन्त गम्भीर प्रश्न पूछा— "जिस व्यक्ति ने पहले स्वयं को हार दिया हो, क्या उसे अपनी पत्नी को दाँव पर लगाने का अधिकार है?" यह प्रश्न केवल द्यूत-क्रीड़ा का नहीं था; यह धर्म, न्याय और अधिकार का प्रश्न था। द्रौपदी का यह प्रश्न आज भी धर्मशास्त्र और नैतिक दर्शन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों में गिना जाता है।

द्रौपदी का धर्म-संबन्धी प्रश्न

द्रौपदी ने सभा में उपस्थित भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और विदुर जैसे महापुरुषों से पूछा— "मैं जानना चाहती हूँ कि मैं जीती गयी हूँ अथवा नहीं। यदि युधिष्ठिर पहले ही स्वयं को हार चुके थे, तो उनके पास मुझे दाँव पर लगाने का अधिकार कैसे रह गया?" यह प्रश्न सुनकर सम्पूर्ण सभा मौन हो गयी। पितामह भीष्म ने कहा कि धर्म अत्यन्त सूक्ष्म है। वे तत्काल इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देने में स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रहे थे। विदुर ने अवश्य दुर्योधन और शकुनि के आचरण की निन्दा की, किन्तु उनकी बात किसी ने नहीं मानी। महाभारत का यह प्रसंग। हमें है कि कभी-कभी अधर्म इतना प्रबल हो जाता है कि बड़े-बड़े विद्वान और शक्तिशाली व्यक्ति भी सत्य का पक्ष लेने में संकोच करने लगते हैं। किन्तु धर्मका निर्णय बहुमत या शक्ति से नहीं होता; वह सत्य के आधार पर होता है।

दुःशासन द्वारा द्रौपदी का अपमान

दुर्योधन के आदेश पर दुःशासन द्रौपदी को बलपूर्वक सभा में ले आया। उस समय वे रजस्वला थीं और अत्यन्त दुःखी अवस्था में थीं। कुरुवंश की महारानी, पाँच महावीरों की धर्मपत्नी और राजपरिवार की कुलवधू के साथ जो व्यवहार किया गया, वह सम्पूर्ण आर्य मर्यादा के विपरीत था। दुर्योधन और उसके अनुयायी अहंकार और विजय के मद में चूर थे। उन्होंने धर्म, शिष्टाचार और कुल-मर्यादा का सर्वथा परित्याग कर दिया। दुःशासन ने द्रौपदी के वस्त्रहरण का प्रयास किया। यह महाभारत का सबसे करुण और हृदयविदारक प्रसंग है। सभा में अनेक महारथी उपस्थित थे, किन्तु अधिकांश मौन बैठे रहे।

भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा

जब द्रौपदी ने देखा कि संसार का कोई सहारा शेष नहीं रहा, तब उन्होंने पूर्ण श्रद्धा और समर्पण के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण किया। उन्होंने अपने दोनों हाथ उठाकर पुकारा— "हे गोविन्द! हे माधव! हे द्वारकानाथ! मेरी रक्षा कीजिये।" भक्तवत्सल भगवान् ने उनकी पुकार सुन ली। दुःशासन जितना वस्त्र खींचता गया, उतना ही नया वस्त्र प्रकट होतागया। अन्ततः वह थककर बैठ गया, किन्तु द्रौपदी की लज्जा अक्षुण्ण रही। यह घटना केवल एक चमत्कार नहीं है। इसका आध्यात्मिक सन्देश यह है कि जब मनुष्य सम्पूर्ण अहंकार त्यागकर ईश्वर की शरण ग्रहण करता है, तब दैवी कृपा उसकी रक्षा करती है।

भीम और द्रौपदी की प्रतिज्ञाएँ

सभा में हुए इस अपमान ने पाण्डवों के हृदय को झकझोर दिया। भीमसेन ने प्रतिज्ञा की— "मैं युद्धभूमि में दुःशासन की छाती फाड़कर उसका रक्त पियूँगा और दुर्योधन की जंघा को अपनी गदा से चूर्ण कर दूँगा।" द्रौपदी ने भी

संकल्प किया कि जब तक दुःशासन के रक्त से अपने केश नहीं धो लेंगी, तब तक उन्हें नहीं बाँधेंगी। ये प्रतिज्ञाएँ केवल व्यक्तिगतप्रतिशोध नहीं थीं; वे उस अन्याय के विरुद्ध उठी हुई धर्म की पुकार थीं जिसने सम्पूर्ण समाज को कलंकित कर दिया था।

धृतराष्ट्र की चेतना का जागरण

जब सभा में अपशकुन प्रकट होने लगे और विदुर ने पुनः चेतावनी दी, तब धृतराष्ट्र भयभीत हो उठे। उन्होंने द्रौपदी से क्षमा याचना की और वर माँगने को कहा। द्रौपदी ने अत्यन्त उदारता और विवेक का परिचय दिया। उन्होंने पहले वर में युधिष्ठिर की मुक्ति माँगी और दूसरे वर में शेष पाण्डवों की। धृतराष्ट्र ने सब कुछ लौटाकर पाण्डवों को सम्मान सहित विदाकर दिया। किन्तु दुर्योधन की ईर्ष्या अभी भी समाप्त नहीं हुई थी।

दूसरा द्यूत और वनवास

दुर्योधन और शकुनि ने पुनः द्यूत-क्रीड़ा का षड्यन्त्र रचा। इस बार शर्त रखी गयी कि जो पराजित होगा, उसे बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करना होगा। धृतराष्ट्र ने पुनः अपनी दुर्बलता का परिचय दिया और इस अन्यायपूर्ण प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। द्यूत पुनः खेला गया और शकुनि के छल से युधिष्ठिर पराजित हो गये। फलस्वरूप पाण्डवोंको वनवास के लिये प्रस्थान करना पड़ा। हस्तिनापुर की जनता दुःखी थी। अनेक लोगों ने अनुभव किया कि राज्य से धर्म और न्याय विदा हो रहे हैं। पाण्डव वन की ओर चले गये, किन्तु उनके साथ सत्य, धर्म और भविष्य की विजय भी चली गयी।

सभापर्व महाभारत का वह निर्णायक अध्याय है जहाँ से कुरुक्षेत्र के युद्ध की पृष्ठभूमि निर्मित होती है। यह केवल राजाओं और राज्यों की कथा नहीं, बल्कि मानव-हृदय में चलने वाले धर्म और अधर्म के संघर्ष का जीवन्त चित्र है।दुर्योधन की ईर्ष्या, शकुनि की कुटिलता, धृतराष्ट्र का मोह, युधिष्ठिर की दुर्बलता, द्रौपदी का धैर्य और श्रीकृष्ण की करुणा—येसभी मिलकर इस पर्व को महाभारत का अत्यन्त मार्मिक और शिक्षाप्रद भाग बनाते हैं। सभापर्व हमें स्मरण कराता है कि एक क्षण का अहंकार, एक गलत निर्णय और अन्याय के प्रति एक मौन स्वीकृति इतिहास की दिशा बदल सकती है। साथ ही यह भी सिखाता है कि चाहे परिस्थितियाँ कितनी ही प्रतिकूल क्यों न हों, धर्म का मार्ग कभी नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि अन्ततः विजय उसी की होती है जो सत्य और धर्म के पक्ष में खड़ा रहता है।

आधुनिक भौतिकी के जनक: आइज़ैक न्यूटन

आइज़ैक न्यूटन इतिहास के सबसे महान वैज्ञानिकों में से एक थे, जिन्होंने आधुनिक विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका जन्म 4 जनवरी 1643 को इंग्लैंड के वूल्स्थॉर्प में हुआ था और उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की।

न्यूटन ने गति के तीन नियमों की खोज की, जो यह बताते हैं कि वस्तुएँ कैसे गति करती हैं और बल उनके व्यवहार को कैसे प्रभावित करता है। उन्होंने सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत भी दिया, जिसके अनुसार सभी वस्तुएँ एक-दूसरे को आकर्षित करती हैं। यह सिद्धांत भौतिकी की आधारशिला माना जाता है।

गणित के क्षेत्र में न्यूटन ने कलन (कैलकुलस) का विकास किया, जो आज विज्ञान और अभियांत्रिकी में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। प्रकाशिकी के क्षेत्र में उनके प्रयोगों ने सिद्ध किया कि श्वेत प्रकाश कई रंगों का मिश्रण है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक प्रिंसिपिया मैथमेटिका (1687) वैज्ञानिक इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण कृतियों में गिनी जाती है। उनके विचार आज भी विज्ञान और तकनीक को प्रेरित करते हैं।

|५|

सांख्य दर्शन : प्रकृति, पुरुष और मोक्ष का सनातन विज्ञान

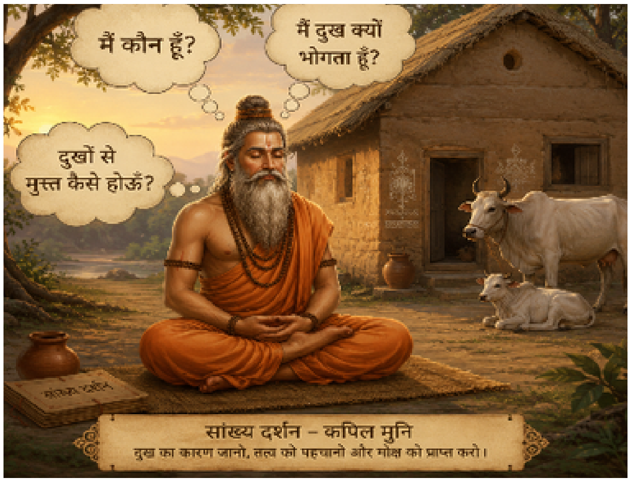

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसकी गहन दार्शनिक परम्परा है। संसार की अनेक सभ्यताओं ने भौतिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया, किन्तु भारत ने मानव जीवन के परम उद्देश्य, आत्मा के स्वरूप, जगत् की उत्पत्ति तथा मोक्ष के रहस्य पर गंभीर चिन्तन किया। इसी चिन्तन का परिणाम भारतीय दर्शन की महान परम्परा है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा तथा वेदान्त—इन छह आस्तिक दर्शनों में सांख्य दर्शन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सांख्य दर्शन को भारतीय दर्शन की प्राचीनतम और सर्वाधिक व्यवस्थित विचार प्रणालियों में गिना जाता है। यह केवल आध्यात्मिक दर्शन ही नहीं, अपितु मानव मन, प्रकृति और ब्रह्माण्ड की संरचना का सूक्ष्म विश्लेषण भी प्रस्तुत करता है। इस दर्शन का मूल उद्देश्य मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध कराकर दुःखों से मुक्त करना है। 'सांख्य' शब्द 'संख्या' से बना है, जिसका अर्थ है—गणना, विवेचन अथवा तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान। सांख्य दर्शन सृष्टि के मूल तत्त्वों की गणना और उनके विश्लेषण के माध्यम से सत्य का अन्वेषण करता है। इसी कारण इसे 'तत्त्वज्ञान का विज्ञान' भी कहा जाता है।

महर्षि कपिल और सांख्य परम्परा

सांख्य दर्शन के आद्य प्रवर्तक महर्षि कपिल माने जाते हैं। भारतीय परम्परा में कपिल मुनि को महान् योगी, तत्त्वदर्शी तथा भगवान् विष्णु का अंशावतार माना गया है। श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित कपिलोपदेश भारतीय आध्यात्मिक साहित्य की अमूल्य निधि है। महर्षि कपिल ने मानव जीवन के मूल प्रश्नों पर विचार किया—

- मैं कौन हूँ?
- यह जगत् क्या है?
- दुःख का कारण क्या है?
- मोक्ष कैसे प्राप्त होता है?

इन प्रश्नों के उत्तर खोजते हुए उन्होंने सांख्य दर्शन की स्थापना की। यद्यपि मूल सांख्य सूत्र आज उपलब्ध नहीं हैं, तथापि महाभारत, भगवद्गीता, उपनिषद् तथा ईश्वरकृष्ण कृत 'सांख्यकारिका' में इसके सिद्धान्त सुरक्षित हैं।

सांख्य का उद्देश्य

सांख्य दर्शन का प्रारम्भ मानव जीवन की सबसे बड़ी समस्या—दुःख—से होता है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है, किन्तु जीवन में निरन्तर दुःखों का सामना करता है। सांख्य दर्शन के अनुसार इन दुःखों के तीन प्रकार हैं—

1. आध्यात्मिक दुःख

शरीर और मन से उत्पन्न दुःख। जैसे रोग, शोक, भय, क्रोध, मोह आदि।

2. आधिभौतिक दुःख

अन्य प्राणियों, मनुष्यों अथवा बाहरी वस्तुओं से प्राप्त कष्ट।

3. आधिदैविक दुःख

प्राकृतिक आपदाएँ, ग्रह-नक्षत्रों के प्रभाव अथवा अदृश्य कारणों से उत्पन्न दुःख।

सांख्य का लक्ष्य इन त्रिविध दुःखों की पूर्ण निवृत्ति है। यह निवृत्ति केवल ज्ञान से सम्भव है, किसी बाह्य साधन से नहीं।

दो अनादि तत्त्व : पुरुष और प्रकृति

सांख्य दर्शन का सम्पूर्ण ढाँचा दो शाश्वत तत्त्वों पर आधारित है।

पुरुष

पुरुष शुद्ध चेतना है। वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं साक्षीस्वरूप है। पुरुष न जन्म लेता है, न मरता है, न कर्म करता है और न किसी परिवर्तन को प्राप्त होता है। वह केवल देखने वाला है। जैसे सूर्य केवल प्रकाश देता है, किन्तु पृथ्वी के कार्यों में भाग नहीं लेता, उसी प्रकार पुरुष सभी अनुभवों का साक्षी होते हुए भी उनसे अलिप्त रहता है। सांख्य दर्शन अनेक पुरुषों को स्वीकार करता है। प्रत्येक जीव में स्वतंत्र चेतना का अस्तित्व माना गया है।

प्रकृति

प्रकृति समस्त दृश्य जगत् का मूल कारण है। यह जड़ है, किन्तु सृजनात्मक शक्ति से सम्पन्न है। शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, पंचमहाभूत तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं। प्रकृति को 'प्रधाना', 'अव्यक्ता' अथवा 'मूलप्रकृति' भी कहा जाता है। प्रकृति तीन गुणों से निर्मित है—सत्त्व, रजस् और तमस्। सत्त्व का स्वभाव प्रकाश, ज्ञान, पवित्रता और संतुलन है। सात्त्विक व्यक्ति सत्यप्रिय, संयमी, शांत तथा विवेकी होता है।रजोगुण गति, कर्म, महत्वाकांक्षा, इच्छा तथा चेष्टा का प्रतीक है। रजोगुण व्यक्ति को कर्मशील बनाता है, किन्तु अत्यधिक होने पर अशान्ति उत्पन्न करता है। तमोगुण अज्ञान, जड़ता, आलस्य, प्रमाद और मोह का कारण है। तमोगुण की प्रधानता व्यक्ति को विवेकहीन बना देती है। इन तीनों गुणों का परस्पर संतुलन ही जीवन और जगत् की विविधता का कारण है।

सृष्टि-विकास का सिद्धान्त

सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि किसी विशेष समय में उत्पन्न नहीं हुई। यह प्रकृति के विकास का परिणाम है। जब तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं, तब प्रकृति अव्यक्त रहती है। पुरुष की उपस्थिति से इस साम्य में विक्षोभ उत्पन्न होता है और सृष्टि-विकास आरम्भ हो जाता है।

महत्

प्रकृति से सर्वप्रथम 'महत्' अथवा 'बुद्धि' उत्पन्न होती है। महत् सम्पूर्ण सृष्टि की सार्वभौमिक बुद्धि है।

अहंकार

महत् से अहंकार उत्पन्न होता है। अहंकार का अर्थ है—'मैं' की भावना। इसी से विविधता का विकास प्रारम्भ होता है।

चौबीस तत्त्वों का विकास

अहंकार से विभिन्न तत्त्व उत्पन्न होते हैं। सात्त्विक अहंकार से मन,पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ नेत्र,कर्ण,नासिका,जिह्वा और त्वचा हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ हैं। तामसिक अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इनसे पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इस प्रकार प्रकृति से विकसित चौबीस तत्त्व सम्पूर्ण जगत् की रचना करते हैं। पुरुष इन सबसे पृथक् पच्चीसवाँ तत्त्व है।

बन्धन का कारण

सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष स्वभावतः मुक्त है। फिर भी जीव बन्धन का अनुभव करता है। इसका कारण है—अविद्या। जब पुरुष स्वयं को शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार के साथ एकाकार मान लेता है, तब बन्धन उत्पन्न होता है। मनुष्य कहता है—मैं दुःखी हूँ। मैं रोगी हूँ।मैं प्रसन्न हूँ। वास्तव में दुःख, रोग और प्रसन्नता मन तथा शरीर के धर्म हैं, आत्मा के नहीं। यह भ्रान्ति ही संसार-बन्धन का कारण है।

विवेक ज्ञान की आवश्यकता

सांख्य दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त 'विवेकख्याति' है।विवेक का अर्थ है—पुरुष और प्रकृति के बीच स्पष्ट भेद का ज्ञान। जब साधक अनुभव करता है— मैं शरीर नहीं हूँ। मैं मन नहीं हूँ।मैं बुद्धि नहीं हूँ। मैं शुद्ध चेतना हूँ। तब उसके समस्त बन्धन नष्ट हो जाते हैं।

कैवल्य : सांख्य का मोक्ष

सांख्य दर्शन में मोक्ष को 'कैवल्य' कहा गया है। कैवल्य का अर्थ है—पुरुष का अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होना। यह कोई स्थान विशेष नहीं, अपितु चेतना की अवस्था है। जब पुरुष प्रकृति के सभी विकारों से स्वयं को पृथक् अनुभव करता है, तब वह मुक्त हो जाता है। उस समय सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय तथा जन्म-मरण का भय समाप्त होजाता है। यही कैवल्य की अवस्था है।

सांख्य और ईश्वर

शास्त्रीय सांख्य दर्शन सृष्टिकर्ता ईश्वर को अनिवार्य तत्त्व के रूप में स्वीकार नहीं करता। इसी कारण इसे निरीश्वरवादी दर्शन कहा जाता है। किन्तु यह समझना आवश्यक है कि निरीश्वरवाद का अर्थ नास्तिकता नहीं है। सांख्य वेदों को प्रमाण मानता है तथा आत्मा और मोक्ष को स्वीकार करता है। उसका केवल यह मत है कि प्रकृति और पुरुष के आधार पर सृष्टि की व्याख्या की जा सकती है।

सांख्य और योग का सम्बन्ध

सांख्य और योग एक-दूसरे के पूरक हैं। सांख्य दर्शन सिद्धान्त प्रदान करता है और योग दर्शन उन सिद्धान्तों को व्यवहार में उतारने की विधि बताता है। महर्षि पतञ्जलि ने सांख्य के तत्त्वज्ञान को स्वीकार करते हुए ध्यान, समाधि और ईश्वर-प्रणिधान का मार्ग प्रस्तुत किया। इसलिए कहा जाता है— "सांख्य ज्ञान है और योग उसका अभ्यास।"

भगवद्गीता में सांख्य

भगवद्गीता में सांख्य दर्शन का विशेष स्थान है। द्वितीय अध्याय 'सांख्ययोग' कहलाता है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को आत्मा की नित्यता तथा शरीर की अनित्यता का उपदेश देते हैं।

गीता का प्रसिद्ध श्लोक—

"न जायते म्रियते वा कदाचित्"

आत्मा की अमरता का प्रतिपादन करता है। गीता में सांख्य योग का सुंदर समन्वय मिलता है।

वेदान्त से तुलना

सांख्य और वेदान्त दोनों का लक्ष्य मोक्ष है, किन्तु उनके सिद्धान्तों में भिन्नता है। सांख्य दो स्वतंत्र तत्त्वों—पुरुष और प्रकृति—को स्वीकार करता है। अद्वैत वेदान्त केवल ब्रह्म को ही परम सत्य मानता है। सांख्य अनेक पुरुषों को स्वीकार करता है, जबकि अद्वैत एक ही सार्वभौमिक आत्मा को मानता है। फिर भी दोनों दर्शनों का अंतिम उद्देश्य अज्ञान का नाश और मुक्ति की प्राप्ति है।

सांख्य का मनोवैज्ञानिक महत्त्व

सांख्य दर्शन मानव मन का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह मन, बुद्धि और अहंकार के कार्यों को स्पष्ट रूप से अलग-अलग समझाता है।

- मन विचारों का संकलन करता है।
- बुद्धि निर्णय लेती है।
- अहंकार 'मैं' और 'मेरा' की भावना उत्पन्न करता है।

आधुनिक मनोविज्ञान जिन विषयों का अध्ययन आज कर रहा है, उनका विवेचन सांख्य ने हजारों वर्ष पूर्व कर दिया था।

आधुनिक जीवन में सांख्य की प्रासंगिकता

आज का मनुष्य तनाव, अवसाद, प्रतिस्पर्धा और असुरक्षा से घिरा हुआ है। सांख्य दर्शन उसे सिखाता है कि वह स्वयं को अपने विचारों और भावनाओं से पृथक् देखे। जब व्यक्ति समझता है कि वह मन नहीं, अपितु मन का साक्षी है, तब उसका दृष्टिकोण बदल जाता है। क्रोध, भय, ईर्ष्या और तनाव की शक्ति कम होने लगती है। योग, ध्यान तथा आत्मचिन्तन की अधिकांश विधियाँ सांख्य दर्शन के सिद्धान्तों पर आधारित हैं। सांख्य दर्शन भारतीय मनीषा की अद्भुत उपलब्धि है। महर्षि कपिल द्वारा प्रतिपादित यह दर्शन मानव जीवन के गहनतम प्रश्नों का तार्किक एवं वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करता है। पुरुष और प्रकृति का विवेक, त्रिगुणों का सिद्धान्त, चौबीस तत्त्वों की व्याख्या तथा कैवल्य का लक्ष्य इसे भारतीय दर्शन की अमूल्य धरोहर बनाते हैं।

|६|

भारतीय ज्योतिष में संक्रान्ति : सिद्धान्त,गणना और महत्त्व

भारतीय संस्कृति में काल गणना का आधार केवल दिन, मास और वर्ष की गणना भर नहीं है, अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के साथ मानव-जीवन का सामंजस्य स्थापित करना भी है। हमारे ऋषि-मुनियों ने आकाश में ग्रहों, नक्षत्रों तथा तारामण्डलों की गति का सूक्ष्म अध्ययन कर यह अनुभव किया कि प्रकृति की प्रत्येक गतिविधि का प्रभाव पृथ्वी तथा मानव-जीवन पर पड़ता है। इन्हीं आकाशीय घटनाओं में सूर्य का विशेष स्थान है। सूर्य समस्त प्राणियों के जीवनदाता, ऊर्जा के स्रोत तथा कालचक्र के नियन्ता माने गये हैं। वैदिक साहित्य में सूर्य को प्रत्यक्ष देवता कहा गया है, क्योंकि उनका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया जा सकता है। ऋग्वेद में कहा गया है—

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।"

अर्थात् सूर्य सम्पूर्ण चराचर जगत् के आत्मस्वरूप हैं। इसी कारण भारतीय ज्योतिष में सूर्य की प्रत्येक गति और परिवर्तन को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। सूर्य के एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करने की घटना को संक्रान्ति कहा जाता है। संक्रान्ति केवल एक ज्योतिषीय गणना नहीं है, बल्कि यह ऋतु-परिवर्तन, कृषि-चक्र, धार्मिक अनुष्ठानों तथाआध्यात्मिक साधना से गहराई से जुड़ी हुई है।

संक्रान्ति का अर्थ एवं परिभाषा

'संक्रान्ति' शब्द संस्कृत के सम् तथा क्रम् धातु से बना है, जिसका अर्थ है—एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर गमन अथवा संक्रमण। ज्योतिषशास्त्र में जब सूर्य एक राशि से निकलकर दूसरी राशि में प्रवेश करता है, उस क्षण को संक्रान्ति कहा जाता है। भारतीय ज्योतिष में राशिचक्र को बारह भागों में विभाजित किया गया है—

- मेष
- वृषभ
- मिथुन
- कर्क
- सिंह
- कन्या
- तुला
- वृश्चिक
- धनु
- मकर
- कुम्भ
- मीन

सूर्य लगभग एक मास तक एक राशि में स्थित रहते हैं और तत्पश्चात् अगली राशि में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार वर्षभर में बारह संक्रान्तियाँ होती हैं।

संक्रान्ति का खगोलीय आधार

खगोलशास्त्र के अनुसार पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। किन्तु पृथ्वी पर स्थित प्रेक्षक को ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य वर्ष भर आकाश में विभिन्न राशियों के मध्य संचरण कर रहा है। इस प्रत्यक्ष गति के कारण सूर्य का प्रत्येक राशि-प्रवेश संक्रान्ति कहलाता है। भारतीय ज्योतिषियों ने हजारों वर्ष पूर्व अत्यन्त सूक्ष्म गणनाओं द्वारा सूर्य की इस गति को समझा तथा उसके आधार पर पंचांग, ऋतु-निर्धारण और कृषि-व्यवस्था का विकास किया। आज भी भारतीय पंचांगों में प्रत्येक संक्रान्ति का समय अत्यन्त सावधानीपूर्वक प्रकाशित किया जाता है।

वैदिक परम्परा में सूर्य का महत्त्व

वेदों एवं उपनिषदों में सूर्य को केवल प्रकाश का स्रोत नहीं, बल्कि चेतना और ज्ञान का प्रतीक माना गया है। गायत्री मन्त्र में प्रार्थना की गयी है—

"तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥"

अर्थात् हम उस परम तेजस्वी सविता देव के दिव्य प्रकाश का ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को सत्यमार्ग की ओर प्रेरित करें। सूर्य को सत्य, तप, आत्मबल तथा आध्यात्मिक जागरण का प्रतीक माना गया है। अतः उनकी प्रत्येक राशि-परिवर्तन घटना आध्यात्मिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

संक्रान्ति का ज्योतिषीय महत्त्व

ज्योतिषशास्त्र में सूर्य निम्नलिखित विषयों के कारक माने गये हैं—

- आत्मा
- पिता
- राजसत्ता
- शासन
- यश एवं प्रतिष्ठा
- स्वास्थ्य
- आत्मविश्वास
- नेतृत्व क्षमता

जब सूर्य राशि परिवर्तन करते हैं तब उनकी ऊर्जा की अभिव्यक्ति में भी परिवर्तन होता है। प्रत्येक राशि का स्वभाव भिन्न होता है, इसलिए सूर्य का प्रभाव भी राशि के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

उदाहरणार्थ—

- मेष में सूर्य उत्साह और नेतृत्व प्रदान करते हैं।
- सिंह में आत्मबल और अधिकार की भावना को बढ़ाते हैं।
- तुला में अपेक्षाकृत निर्बल माने जाते हैं।
- मकर में कर्मशीलता और अनुशासन को प्रोत्साहित करते हैं।

मानव जीवन पर संक्रान्ति का प्रभाव

संक्रांति मानव जीवन को विभिन्न तरीकों से प्रभावित करती है।

शारीरिक प्रभाव

सूर्य समस्त जैविक क्रियाओं के मूल स्रोत हैं। ऋतु परिवर्तन के साथ शरीर की प्रकृति भी बदलती है। आयुर्वेद के अनुसार वात, पित्त और कफ का संतुलन सूर्य की स्थिति तथा ऋतु के अनुसार प्रभावित होता है।

संक्रान्ति के समय—

- तापमान में परिवर्तन प्रारम्भ होता है।
- पाचन शक्ति प्रभावित हो सकती है।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता में परिवर्तन देखा जा सकता है।
- शरीर नई ऋतु के अनुकूल होने का प्रयास करता है।

इसी कारण भारतीय परम्परा में संक्रान्ति के अवसर पर विशेष आहार-विहार का विधान किया गया है।

मानसिक प्रभाव

सूर्य मनुष्य के आत्मविश्वास तथा व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। संक्रान्ति के समय अनेक लोगों में मानसिक परिवर्तन अनुभव किये जाते हैं।

- नये विचार उत्पन्न हो सकते हैं।
- आत्ममन्थन की प्रवृत्ति बढ़ सकती है।
- निर्णय लेने की इच्छा जागृत हो सकती है।
- कुछ व्यक्तियों को बेचैनी अथवा अस्थिरता का अनुभव भी हो सकता है।

इसी कारण अनेक ज्योतिषाचार्य संक्रान्ति के क्षण को अत्यन्त संवेदनशील समय मानते हैं।

संक्रान्ति का धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व

धर्मशास्त्रों में संक्रान्ति को पुण्यकाल कहा गया है। इस दिन किये गये जप, तप, दान और स्नान का फल सामान्य दिनों की अपेक्षा अधिक माना गया है।

संक्रान्ति के अवसर पर निम्नलिखित कार्य विशेष रूप से किये जाते हैं—

- तीर्थस्नान
- सूर्योपासना
- आदित्यहृदय स्तोत्र का पाठ
- गायत्री मन्त्र जप
- तिलदान
- अन्नदान
- वस्त्रदान
- गौसेवा

पुराणों में वर्णित है कि संक्रान्ति के दिन किया गया दान अक्षय फल प्रदान करता है।

मकर संक्रान्ति का महत्त्व

बारह संक्रान्तियों में मकर संक्रान्ति का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस दिन सूर्य धनु राशि से मकर राशि में प्रवेश करते हैं। इसे उत्तरायण का प्रारम्भ माना जाता है। महाभारत में वर्णित है कि भीष्म पितामह ने उत्तरायण की प्रतीक्षा कर अपने प्राण त्यागे थे। इससे उत्तरायण की महत्ता स्पष्ट होती है। मकर संक्रान्ति को भारत के विभिन्न भागों में विविध नामोंसे मनाया जाता है—

- पोंगल (तमिलनाडु)
- उत्तरायण (गुजरात)
- माघ बिहू (असम)
- लोहड़ी (पंजाब)
- खिचड़ी पर्व (उत्तर प्रदेश एवं बिहार)

यह फसल कटाई, समृद्धि तथा आध्यात्मिक उन्नति का पर्व है।

कर्क संक्रान्ति और दक्षिणायन

जब सूर्य कर्क राशि में प्रवेश करते हैं तब दक्षिणायन आरम्भ होता है। धार्मिक मान्यता के अनुसार—

- उत्तरायण देवताओं का दिन है।
- दक्षिणायन देवताओं की रात्रि है।

दक्षिणायन को आत्मचिन्तन, तप, व्रत और साधना के लिए विशेष उपयुक्त माना गया है। चातुर्मास भी इसी काल में आता है, जिसमें साधु-सन्त एक स्थान पर रहकर साधना करते हैं।

मेष संक्रान्ति

मेष संक्रान्ति को अनेक प्रदेशों में सौर नववर्ष के रूप में मनाया जाता है।

- बंगाल में पोहेला बोइशाख
- केरल में विषु
- पंजाब में वैशाखी

ओडिशा में महाविषुव संक्रान्ति

तुला संक्रान्ति

तुला संक्रान्ति का विशेष महत्त्व दक्षिण भारत के अनेक मंदिरों में माना जाता है।

सिंह एवं कन्या संक्रान्ति

इनका सम्बन्ध वर्षा ऋतु तथा कृषि-चक्र से जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्रत्येक संक्रान्ति किसी न किसी क्षेत्रीय परम्परा से जुड़ी हुई है।

संक्रान्ति और तिथि का पारस्परिक सम्बन्ध

हिन्दू पंचांग सूर्य तथा चन्द्र दोनों की गतियों पर आधारित है। इसलिए जब संक्रान्ति किसी विशेष तिथि के साथ संयोग बनाती है तब उसका महत्त्व बढ़ जाता है।

अमावस्या पर संक्रान्ति

अमावस्या पितरों की तिथि मानी जाती है। यदि संक्रान्ति अमावस्या को हो—

- पितृ तर्पण का विशेष महत्त्व होता है।
- दान का फल बढ़ जाता है।
- आत्मचिन्तन की प्रवृत्ति बढ़ती है।

पूर्णिमा पर संक्रान्ति

पूर्णिमा चन्द्रमा की पूर्ण कलाओं का प्रतीक है।ऐसे संयोग में—

- धार्मिक अनुष्ठान शुभ माने जाते हैं।
- ध्यान और जप में मन अधिक लगता है।
- मानसिक प्रसन्नता में वृद्धि होती है।

एकादशी पर संक्रान्ति

एकादशी भगवान विष्णु की प्रिय तिथि मानी गयी है। यदि संक्रान्ति एकादशी को हो—

- व्रत का फल विशेष माना जाता है।
- मन पर नियन्त्रण बढ़ता है।
- आध्यात्मिक उन्नति के अवसर बढ़ते हैं।

चतुर्थी पर संक्रान्ति

चतुर्थी भगवान गणेश को समर्पित है। इस दिन संक्रान्ति होने पर—

- विघ्नों के निवारण हेतु पूजा विशेष फलदायी मानी जाती है।
- नये कार्यों की योजना बनाना शुभ माना जाता है।

छह ऋतुओं में संक्रान्ति का प्रभाव

भारतीय परम्परा में वर्ष को छह ऋतुओं में विभाजित किया गया है—

1. वसन्त
2. ग्रीष्म
3. वर्षा
4. शरद
5. हेमन्त
6. शिशिर
7.

वसन्त ऋतु

यह नवजीवन और सृजन की ऋतु है। इस काल की संक्रान्तियाँ शिक्षा, कला और रचनात्मकता के लिए अनुकूल मानी जाती हैं।

ग्रीष्म ऋतु

इस समय सूर्य का प्रभाव प्रबल होता है। आत्मसंयम और अनुशासन की आवश्यकता बढ़ जाती है।

वर्षा ऋतु

इस ऋतु में भावनात्मक संवेदनशीलता बढ़ सकती है। स्वास्थ्य की विशेष देखभाल आवश्यक होती है।

शरद ऋतु

शुद्ध आकाश और निर्मल वातावरण के कारण अध्ययन तथा महत्त्वपूर्ण निर्णयों के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

हेमन्त एवं शिशिर

यह संचय और आत्मबल की ऋतुएँ हैं। साधना एवं योगाभ्यास के लिए अत्यन्त अनुकूल मानी जाती हैं।

संक्रान्ति का आध्यात्मिक संदेश

संक्रान्ति हमें यह शिक्षा देती है कि संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है। परिवर्तन ही प्रकृति का शाश्वत नियम है। जैसे सूर्य निरन्तर अपनी गति से आगे बढ़ता रहता है, वैसे ही मनुष्य को भी जीवन में आगे बढ़ना चाहिए—

- अज्ञान से ज्ञान की ओर
- असत्य से सत्य की ओर
- आलस्य से पुरुषार्थ की ओर
- अन्धकार से प्रकाश की ओर

उपनिषद् की प्रार्थना— "तमसो मा ज्योतिर्गमय" संक्रान्ति के इसी संदेश को अभिव्यक्त करती है।

भारतीय ज्योतिष में संक्रान्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अवधारणा है। यह सूर्य के एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश का सूचक होने के साथ-साथ ऋतु-परिवर्तन, कृषि, धर्म, आध्यात्मिक साधना तथा मानव-जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित है। मकर संक्रान्ति, कर्क संक्रान्ति तथा अन्य सभी संक्रान्तियाँ हमें प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रेरणा देती हैं। संक्रान्ति का वास्तविक संदेश यह है कि सम्पूर्ण सृष्टि निरन्तर गतिशील है। परिवर्तन से भयभीत होने के स्थान पर उसे स्वीकार कर आत्मविकास की दिशा में अग्रसर होना ही जीवन की सफलता है। सूर्य की भाँति निरन्तर प्रकाशमान रहना तथा अपने जीवन को धर्म, ज्ञान और पुरुषार्थ से आलोकित करना ही संक्रान्ति का परम आध्यात्मिक रहस्य है।

|७|

वसंत पंचमी : वसंत, ज्ञान और नवजीवन का उत्सव

भारतीय संस्कृति में पर्व एवं उत्सव केवल आनन्द-प्रदर्शन अथवा सामाजिक मेल-मिलाप के अवसर नहीं हैं, अपितु वे मानव-जीवन को धर्म, संस्कृति, प्रकृति और आध्यात्मिकता के साथ जोड़ने वाले दिव्य सेतु हैं। भारतवर्ष की सनातन परम्परा में प्रत्येक ऋतु, प्रत्येक मास और प्रत्येक पर्व के पीछे कोई न कोई गूढ़ आध्यात्मिक संदेश निहित है। इन्हीं पावन उत्सवों में वसन्त पंचमी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को मनाया जाने वाला यह पर्व ऋतुराज वसन्त के आगमन की घोषणा करता है। यह प्रकृति के नवजीवन, ज्ञान के प्रकाश तथा मानवीय चेतना के जागरण का उत्सव है। इस दिन सम्पूर्ण भारतवर्ष में विद्या, बुद्धि, वाणी और कलाओं की अधिष्ठात्री भगवती सरस्वती की पूजा-अर्चना की जाती है। वसन्त पंचमी केवल एक धार्मिक पर्व नहीं है, बल्कि यह ज्ञान, विवेक, संस्कृति, साहित्य, संगीत और साधना का उत्सव है। यह मनुष्य को स्मरण कराती है कि जीवन की वास्तविक सम्पन्नता धन और वैभव में नहीं, बल्कि ज्ञान, सदाचार और आत्मिक उन्नति में निहित है।

ऋतुराज वसन्त का आगमन

भारतीय मनीषियों ने वर्ष को छह ऋतुओं में विभाजित किया है—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर। इनमें वसन्त को 'ऋतुराज' अर्थात् ऋतुओं का राजा कहा गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**"ऋतूनां कुसुमाकरः।"** अर्थात् ऋतुओं में मैं पुष्पों से युक्त वसन्त हूँ। यह कथन वसन्त ऋतु के महत्त्व को स्पष्ट करता है। शिशिर ऋतु की कठोरता समाप्त होने लगती है। वृक्षों पर नवीन पल्लव प्रकट होते हैं। आम्रवृक्षों में मंजरी खिलती है। विविध प्रकार के पुष्प धरती को रंग-बिरंगे सौन्दर्य से अलंकृत कर देते हैं। उत्तर भारत के खेतों में पीली सरसों की चादर बिछ जाती है। कोयल का मधुर कलरव वातावरण में मधुरता घोलदेता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण प्रकृति नवजीवन प्राप्त कर आनन्द से झूम उठी हो। वसन्त पंचमी इसी नवजीवन और नवचेतना का उत्सव है।

भगवती सरस्वती का स्वरूप एवं महिमा

वसन्त पंचमी का प्रमुख आधार भगवती सरस्वती की उपासना है। वे ज्ञान, वाणी, संगीत, साहित्य, विद्या और समस्त कलाओं की अधिष्ठात्री देवी हैं। पुराणों में उनका स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—

"या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना॥"

अर्थात् जो कुन्द पुष्प, चन्द्रमा और हिम के समान श्वेतवर्ण वाली हैं, श्वेत वस्त्र धारण करती हैं तथा वीणा धारण कर श्वेत कमल पर विराजमान हैं, उन भगवती सरस्वती को नमस्कार है। भगवती सरस्वती के स्वरूप में अनेक आध्यात्मिक संकेत छिपे हुए हैं—

- श्वेत वस्त्र पवित्रता का प्रतीक हैं।
- वीणा कला एवं संगीत की प्रतीक है।
- पुस्तक ज्ञान का प्रतीक है।
- अक्षसूत्र साधना और ध्यान का प्रतीक है।

- हंस विवेक और सत्य-असत्य के भेदज्ञान का प्रतीक है।

इस प्रकार सरस्वती केवल विद्या की देवी ही नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण जीवन की प्रेरणा भी हैं।

सरस्वती की उत्पत्ति सम्बन्धी पौराणिक कथा

पुराणों में वर्णित है कि सृष्टि के प्रारम्भ में जब ब्रह्माजी ने जगत् की रचना की, तब चारों ओर नीरवता व्याप्त थी। न तो वाणी थी, न संगीत और न ही अभिव्यक्ति का कोई माध्यम। तब ब्रह्माजी ने अपने कमण्डलु का जल पृथ्वी पर छिड़का। उस दिव्य शक्ति से एक तेजस्विनी देवी प्रकट हुईं। उनके हाथों में वीणा थी। ब्रह्माजी के अनुरोध पर देवी ने वीणा का मधुर नाद किया। उसी क्षण सम्पूर्ण सृष्टि में ध्वनि का संचार हुआ। पक्षियों को स्वर मिले, नदियाँ कल-कल करने लगीं और मनुष्यों को वाणी प्राप्त हुई। तब ब्रह्माजी ने उन्हें 'सरस्वती' नाम प्रदान किया। इस कथा का गूढ़ अर्थ यह है कि ज्ञान और अभिव्यक्ति के बिना जीवन अधूरा है। सरस्वती चेतना, भाषा और संस्कृति की मूल शक्ति हैं।

पीले रंग का आध्यात्मिक महत्त्व

वसन्त पंचमी का एक विशेष आकर्षण पीला रंग है। इस दिन पीले वस्त्र धारण करने और पीले व्यंजन बनाने की परम्परा है। पीला रंग भारतीय चिन्तन में ज्ञान ,उत्साह समृद्धि और कृषि सम्पन्नता का प्रतीक है। वसन्त ऋतु में सरसों के पुष्पों से धरती पीली दिखाई देती है। सूर्य की सुनहरी किरणें प्रकृति को नवीन ऊर्जा प्रदान करती हैं। इसी कारण वसन्तपंचमी पर पीले वस्त्र धारण करना प्रकृति के साथ एकात्मता का प्रतीक माना जाता है।

विद्यारम्भ संस्कार और वसन्त पंचमी

भारतीय संस्कृति में शिक्षा को केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं माना गया, बल्कि आत्मविकास का माध्यम समझा गया है। वेदों में प्रार्थना की गई है— **"सा विद्या या विमुक्तये।"** अर्थात् वही विद्या है जो मनुष्य को बन्धनों से मुक्त करे। वसन्त पंचमी को शिक्षा आरम्भ करने का अत्यन्त शुभ मुहूर्त माना जाता है। अनेक स्थानों पर बालकों का अक्षरारम्भसंस्कार इसी दिन सम्पन्न किया जाता है। बालक पहली बार ॐ लिखता है, श्रीगणेशाय नमः लिखता है, अथवा सरस्वती वन्दना लिखता है। यह संस्कार केवल अक्षर ज्ञान नहीं, बल्कि ज्ञान के पवित्र मार्ग पर प्रवेश का प्रतीक है।

संगीत, साहित्य और कला का उत्सव

भारत की संस्कृति में संगीत को ईश्वर की भाषा कहा गया है। सामवेद को संगीत का मूल स्रोत माना जाता है। भगवती सरस्वती वीणावादिनी हैं। इसलिए संगीतज्ञ, कवि, साहित्यकार, चित्रकार और कलाकार इस दिन विशेष रूप से उनकी पूजा करते हैं। विद्यालयों और सांस्कृतिक संस्थानों में संगीत समारोह, कवि सम्मेलन, नृत्य प्रस्तुतियाँ और चित्रकलाप्रदर्शनियाँ आयोजित की जाती हैं। इस प्रकार वसन्त पंचमी भारतीय सांस्कृतिक परम्परा को जीवित रखने का भी माध्यम है।

बंगाल और ओडिशा में वसन्त पंचमी

यहाँ वसन्त पंचमी को सरस्वती पूजा के रूप में अत्यन्त भव्यता से मनाया जाता है। विद्यालयों और महाविद्यालयों में विशाल पूजा-पण्डाल सजाये जाते हैं।

पंजाब और हरियाणा में वसन्त पंचमी

यहाँ इसे बसन्त उत्सव कहा जाता है। पतंग उड़ाने की परम्परा विशेष रूप से प्रसिद्ध है। लोकगीतों और लोकनृत्यों के माध्यम से ऋतुराज का स्वागत किया जाता है।

उत्तर प्रदेश और बिहार में वसन्त पंचमी

घरों, विद्यालयों और मंदिरों में सरस्वती पूजा की जाती है। विद्यार्थियों के लिए यह विशेष उत्सव का दिन होता है।

राजस्थान और मध्यप्रदेश में वसन्त पंचमी

यहाँ पीले वस्त्र पहनकर मंदिरों में पूजा-अर्चना की जाती है तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित होते हैं।

दक्षिण भारत में वसन्त पंचमी

कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और तेलंगाना में भी सरस्वती उपासना की परम्परा है। विद्यार्थी अपनी पुस्तकों और वाद्ययंत्रों का पूजन करते हैं।

वसन्त पंचमी और भारतीय दर्शन

भारतीय दर्शन के अनुसार मनुष्य का वास्तविक विकास तभी सम्भव है जब उसके भीतर ज्ञान और विवेक का प्रकाश उत्पन्न हो। वसन्त पंचमी इसी आध्यात्मिक सत्य का प्रतीक है। जैस वृक्षों में नवीन पल्लव आते हैं, पुष्प खिलते हैं, प्रकृति में नवजीवन आता है, वैसे ही मनुष्य के अन्तःकरण में भी ज्ञान का वसन्त आना चाहिए। यदि बाहरी प्रकृति हरी-भरी हो जाए परन्तु मनुष्य का अन्तःकरण अज्ञान, अहंकार और स्वार्थ से भरा रहे, तो वास्तविक वसन्त नहीं आता। इसलिए सरस्वती उपासना का तात्पर्य केवल पूजा करना नहीं, बल्कि जीवन में ज्ञान, विनय और विवेक को अपनाना है।

आधुनिक युग में वसन्त पंचमी की प्रासंगिकता

आज का युग विज्ञान, तकनीक और सूचना का युग है। ज्ञान के साधन पहले की अपेक्षा कहीं अधिक उपलब्ध हैं। किन्तु इसके साथ-साथ मानसिक तनाव, नैतिक पतन और सांस्कृतिक विस्मृति की समस्याएँ भी बढ़ रही हैं। ऐसी स्थिति में वसन्त पंचमी का संदेश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यह पर्व हमें सिखाता है ज्ञान को विनम्रता के साथ ग्रहण करना,संस्कृति का सम्मान करना, कला और साहित्य को जीवन में स्थान देना तथा भौतिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक विकास को भी महत्त्व देना। भगवती सरस्वती की कृपा केवल परीक्षा में सफलता तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मनुष्य को विवेकपूर्ण और सार्थक जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

वसन्त पंचमी भारतीय संस्कृति का एक दिव्य, प्रेरणादायी और जीवनोपयोगी पर्व है। यह प्रकृति के नवजीवन, ज्ञान के प्रकाश और आध्यात्मिक जागरण का उत्सव है। इस दिन हम भगवती सरस्वती की आराधना कर उनसे केवल विद्या ही नहीं, बल्कि विवेक, सद्बुद्धि और चरित्रबल की भी प्रार्थना करते हैं। पंजाब के सरसों के स्वर्णिम खेतों से लेकर बंगाल के भव्य सरस्वती पूजा-पण्डालों तक, यह पर्व सम्पूर्ण भारत को एक सांस्कृतिक सूत्र में बाँधता है। वसन्त पंचमी हमें यह सन्देश देती है कि मनुष्य का जीवन तभी सार्थक है जब उसमें ज्ञान का प्रकाश, संस्कृति का गौरव, कला का सौन्दर्य और आत्मा की शान्ति विद्यमान हो। वास्तव में यही भगवती सरस्वती की उपासना का परम उद्देश्य है और यही वसन्त पंचमी का शाश्वत संदेश भी है।

विश्व साहित्य के अमर नाटककार: विलियम शेक्सपियर

विलियम शेक्सपियर (1564–1616) अंग्रेज़ी भाषा के महानतम साहित्यकारों में गिने जाते हैं और विश्व साहित्य पर उनका प्रभाव अतुलनीय है। उनका जन्म इंग्लैंड के स्ट्रैटफ़ोर्ड-अपॉन-एवन में हुआ। वे लंदन की प्रसिद्ध नाट्य संस्था लॉर्ड चेम्बरलेन्स मेन के प्रमुख सदस्य थे। शेक्सपियर ने 39 नाटक, 154 सॉनेट तथा अनेक कविताएँ लिखीं। उनके प्रसिद्ध नाटकों में हैमलेट, मैकबेथ, ओथेलो और रोमियो एंड जूलियट शामिल हैं।

शेक्सपियर ने अंग्रेज़ी भाषा को अनेक नए शब्द और अभिव्यक्तियाँ प्रदान कीं, जिनका प्रयोग आज भी किया जाता है। प्रेम, महत्वाकांक्षा, ईर्ष्या, सत्ता और मानवीय स्वभाव जैसे सार्वभौमिक विषयों पर उनकी गहरी समझ उनकी रचनाओं को कालजयी बनाती है। उनके पात्र अत्यंत जीवंत और मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावशाली हैं। उनकी कृतियाँ अनेक भाषाओं में अनूदित हुई हैं और नाटक, फ़िल्म तथा अन्य कलाओं को निरंतर प्रेरित करती रही हैं। इसलिए शेक्सपियर विश्व साहित्य के एक अमर स्तंभ माने जाते हैं।

|८|

आत्मविश्वास और भय का द्वंद्व: भगवद्गीता १.६ – १.१०

भगवद्गीता का प्रथम अध्याय 'अर्जुनविषादयोग' नाम से प्रसिद्ध है। इस अध्याय में महाभारत के महान् युद्ध का प्रारम्भिक दृश्य प्रस्तुत किया गया है। कुरुक्षेत्र की धर्मभूमि में कौरव और पाण्डव सेनाएँ युद्ध के लिए तत्पर होकर खड़ी हैं। दोनों पक्षों के शंख बज चुके हैं और युद्ध किसी भी क्षण आरम्भ हो सकता है। ऐसे समय राजा दुर्योधन अपनी सेना के प्रधानआचार्य द्रोणाचार्य के समीप जाकर दोनों सेनाओं की स्थिति का वर्णन करता है। श्लोक ६ से १० तक दुर्योधन के कथनों में केवल युद्धनीति ही नहीं, बल्कि उसके मन की स्थिति भी प्रकट होती है। बाह्य रूप से वह आत्मविश्वास का प्रदर्शन करता है, परन्तु उसके शब्दों में छिपी हुई चिंता और आशंका भी स्पष्ट दिखाई देती है। यही कारण है कि इन श्लोकों का अध्ययन केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

** **श्लोक ६** **

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥

अर्थ

धृष्टकेतु, चेकितान, पराक्रमी काशिराज, पुरुजित, कुन्तिभोज तथा नरश्रेष्ठ शैब्य भी पाण्डवों की ओर से उपस्थित हैं।

भावार्थ एवं विवेचन

दुर्योधन यहाँ पाण्डव-पक्ष के प्रमुख महारथियों का उल्लेख कर रहा है। ये सब साधारण सैनिक नहीं थे, अपितु महान् योद्धा, अनुभवी राजा और युद्धविद्या में निपुण वीर थे। धृष्टकेतु चेदिराज शिशुपाल के पुत्र थे। चेकितान यादववंश के पराक्रमी योद्धा थे। काशिराज अपने अद्भुत शौर्य के लिए प्रसिद्ध थे। इसी प्रकार पुरुजित, कुन्तिभोज और शैब्य भी श्रेष्ठवीरों में गिने जाते थे। दुर्योधन इन योद्धाओं के नाम लेकर द्रोणाचार्य को यह दिखाना चाहता है कि पाण्डवों की सेना को हलके में नहीं लिया जा सकता। वह शत्रु की शक्ति को भलीभाँति पहचानता है। संसार में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य परिस्थितियों का यथार्थ मूल्यांकन करे। जो व्यक्ति केवल अपने बल का विचार करता हैऔर विपक्ष की सामर्थ्य को नहीं समझता, वह अनेक बार पराजित हो जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह श्लोक एक और संकेत देता है। पाण्डव पक्ष धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। अतः उसके साथ खड़े योद्धा धर्म, साहस, सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता और सद्गुणों के प्रतीक माने जा सकते हैं। जब मनुष्य धर्ममार्ग का अनुसरण करता है, तब उसके भीतरअनेक शुभ शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं। ये शक्तियाँ ही कठिन परिस्थितियों में उसकी रक्षा करती हैं। जीवन भी एक युद्धभूमि है। यहाँ मनुष्य को लोभ, मोह, क्रोध, ईर्ष्या और अन्य अनेक विकारों से संघर्ष करना पड़ता है। ऐसे संघर्षों में विजय प्राप्त करने के लिए केवल बाहरी सामर्थ्य पर्याप्त नहीं होती, बल्कि सद्गुणों की सेना भी आवश्यक होती है। यहश्लोक हमें उसी सत्य का स्मरण कराता है।

** **श्लोक ७** **

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥

अर्थ

हे द्विजश्रेष्ठ! अब हमारी सेना के जो विशिष्ट नायक हैं, उन्हें भी आप जान लीजिए। आपकी जानकारी के लिए मैं उनके नाम कहता हूँ।

भावार्थ एवं विवेचन

पाण्डव सेना का वर्णन करने के पश्चात् दुर्योधन अपनी सेना की ओर ध्यान आकर्षित करता है। वह द्रोणाचार्य को 'द्विजोत्तम' कहकर संबोधित करता है। यह संबोधन सम्मानपूर्ण है, क्योंकि द्रोणाचार्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे तथा महान् गुरु थे। किन्तु यहाँ एक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पक्ष भी दिखाई देता है। दुर्योधन जानता था कि द्रोणाचार्य का स्नेह अर्जुनके प्रति अधिक था। अतः वह सम्मानसूचक शब्दों का प्रयोग करके उन्हें अपने पक्ष में दृढ़ रखने का प्रयत्न करता है। संकट की घड़ी में मनुष्य अपने सहयोगियों को अपने साथ बनाए रखने का प्रयास करता है। दुर्योधन की यह प्रवृत्ति भी उसी का द्योतक है। इस श्लोक में मानव-मन की एक स्वाभाविक स्थिति दिखाई देती है। जब व्यक्ति किसी बड़ी चुनौती कासामना करता है, तब वह अपनी शक्तियों का स्मरण करके आत्मबल प्राप्त करता है। दुर्योधन भी यही कर रहा है। पाण्डव सेना की शक्ति देखकर उसके मन में जो चिंता उत्पन्न हुई थी, उसे दूर करने के लिए वह अपनी सेना के प्रमुख योद्धाओं का उल्लेख करने जा रहा है। साधक के जीवन में भी ऐसा होता है। जब उसे कठिनाइयाँ घेर लेती हैं, तब यदि वहकेवल समस्याओं का ही चिंतन करता रहे तो उसका मन दुर्बल हो जाता है। किन्तु यदि वह ईश्वर की कृपा, गुरु के उपदेश और अपने भीतर स्थित सद्गुणों का स्मरण करे, तो उसे पुनः उत्साह प्राप्त होता है।

**** श्लोक ८ ****

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥

अर्थ

आप स्वयं, पितामह भीष्म, कर्ण, संग्राम-विजयी कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण तथा सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाभी हमारी ओर से उपस्थित हैं।

भावार्थ एवं विवेचन

अब दुर्योधन अपनी सेना के प्रमुख महारथियों का उल्लेख करता है। सबसे पहले वह द्रोणाचार्य का नाम लेता है, फिर भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण और भूरिश्रवा का स्मरण करता है। इन सभी योद्धाओं का महाभारत में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। भीष्म अतुलनीय पराक्रम और प्रतिज्ञापालन के लिए प्रसिद्ध थे। कर्ण महान् धनुर्धर तथा दुर्योधनका परम मित्र था। कृपाचार्य युद्धविद्या के अद्वितीय आचार्य थे। अश्वत्थामा अत्यन्त पराक्रमी योद्धा था। विकर्ण कौरवों में सबसे अधिक न्यायप्रिय माना जाता था। दुर्योधन इन नामों का उल्लेख करके अपनी सेना का मनोबल बढ़ाना चाहता है। उसे विश्वास है कि ऐसे महान् योद्धाओं के रहते उसकी विजय निश्चित है। किन्तु यहाँ एक गम्भीर शिक्षा भी छिपीहुई है। इन योद्धाओं में सामर्थ्य की कोई कमी नहीं थी, परन्तु उनमें से अनेक धर्म और अधर्म के संघर्ष में स्पष्ट निर्णय नहीं ले सके। भीष्म और द्रोण जैसे महापुरुष धर्म को जानते हुए भी कौरव-पक्ष में खड़े रहे। इसका कारण उनका कर्तव्यबोध, प्रतिज्ञा तथा राजनिष्ठा थी। यह स्थिति बताती है कि केवल शक्ति, ज्ञान और प्रतिष्ठा ही पर्याप्त नहीं हैं। यदि मनुष्यधर्म के पक्ष में दृढ़तापूर्वक खड़ा न हो सके, तो उसकी महान् योग्यताएँ भी अपेक्षित फल नहीं दे पातीं। वास्तविक सामर्थ्य वही है जो सत्य और न्याय के मार्ग का अनुसरण करे। आज के जीवन में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। प्रतिभा और शक्ति तभी कल्याणकारी बनती हैं जब उनका उपयोग धर्मसम्मत उद्देश्यों के लिए किया जाए।

**** श्लोक ९ ****

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥

अर्थ

और भी बहुत से शूरवीर हैं, जिन्होंने मेरे लिए अपने प्राणों

का त्याग करना स्वीकार कर लिया है। वे विविध प्रकार केअस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित तथा युद्धकला में अत्यन्त निपुण हैं।

भावार्थ एवं विवेचन

इस श्लोक में दुर्योधन अपनी सेना की विशालता और अपने अनुयायियों की निष्ठा का वर्णन करता है। वह कहता है कि अनेक योद्धा उसके लिए प्राण देने को तैयार हैं। यह कथन सुनने में प्रभावशाली प्रतीत होता है, किन्तु इसमें दुर्योधन के अहंकार की झलक भी दिखाई देती है। वह यह नहीं कहता कि वे धर्म की रक्षा के लिए युद्ध कर रहे हैं, बल्कि यह कहताहै कि वे 'मेरे लिए' प्राण देने को तत्पर हैं। यहीं से उसके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामने आता है।दुर्योधन का केन्द्र धर्म नहीं, स्वयं उसका अहंकार है। वह राज्य, सत्ता और अपने स्वार्थ को ही सर्वोपरि मानता है। गीता के समस्त उपदेशों में अहंकार को बन्धन का मूल कारण बताया गया है। जब मनुष्य स्वयं को ही सब कुछ मानने लगता है, तब उसकाविवेक ढक जाता है। वह अपने हित और धर्म के हित में भेद नहीं कर पाता। यह श्लोक हमें यह भी सिखाता है कि निष्ठा तभी सार्थक है जब उसका आधार सत्य और धर्म हो। केवल किसी व्यक्ति के प्रति अंधी भक्ति कल्याणकारी नहीं होती। यदि उद्देश्य अधर्मपूर्ण हो, तो महान् साहस और समर्पण भी अंततः विनाश का कारण बन सकते हैं। सच्चा नेतृत्व वह है जो लोगों को अपने लिए नहीं, बल्कि धर्म, न्याय और लोककल्याण के लिए प्रेरित करे। भगवान श्रीकृष्ण का नेतृत्व इसी आदर्श का प्रतीक है।

** **श्लोक १०** **

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥

अर्थ

पितामह भीष्म द्वारा रक्षित हमारी सेना अपरिमित है और भीम द्वारा रक्षित इन पाण्डवों की सेना सीमित है।

भावार्थ एवं विवेचन

दुर्योधन यहाँ अपनी सेना की श्रेष्ठता का उद्घोष करता है। उसे विश्वास है कि भीष्म जैसे महान् योद्धा के रहते उसकी सेना अजेय है। दूसरी ओर वह पाण्डवों की सेना को अपेक्षाकृत कम बलवान बताता है। किन्तु अनेक आचार्यों ने इस कथन में छिपी हुई चिंता की ओर संकेत किया है। जो व्यक्ति पूर्णतः निश्चिन्त होता है, उसे अपनी शक्ति का बार-बार बखानकरने की आवश्यकता नहीं होती। अतः दुर्योधन का यह कथन उसके मन की असुरक्षा को भी व्यक्त करता है।वास्तव में वह जानता था कि पाण्डवों के साथ धर्म है। श्रीकृष्ण स्वयं उनके सारथि हैं। इसलिए बाहरी शक्ति होने पर भी उसके हृदय में भय विद्यमान था। इस श्लोक का आध्यात्मिक संदेश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संसार में विजय केवल संख्या, धन, साधन या बाहरी सामर्थ्य से नहीं मिलती। यदि धर्म का आधार न हो, तो विशालतम शक्ति भी अंततः पराजित हो सकती है। महाभारत का परिणाम इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। कौरवों की सेना पाण्डवों की अपेक्षा कहीं अधिक विशाल थी, फिर भी विजय पाण्डवों को प्राप्त हुई। इसका कारण यह था कि वे धर्म के पक्ष में थे और श्रीकृष्ण का मार्गदर्शन उन्हेंप्राप्त था। अतः मनुष्य को बाहरी साधनों पर गर्व नहीं करना चाहिए। वास्तविक बल धर्म, सत्य, आत्मसंयम और ईश्वर-विश्वास में निहित है।

भगवद्गीता के प्रथम अध्याय के श्लोक ६ से १० केवल युद्धभूमि में उपस्थित योद्धाओं की सूची नहीं हैं। इनमें मानव-स्वभाव का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण निहित है। दुर्योधन के शब्दों में आत्मविश्वास भी है, रणनीति भी है, गर्व भी है और भीतर छिपी हुई आशंका भी। ये श्लोक हमें बताते हैं कि जीवन का प्रत्येक क्षेत्र एक प्रकार का कुरुक्षेत्र है। यहाँ मनुष्य को निरन्तरधर्म और अधर्म, विवेक और मोह, विनय और अहंकार के बीच चयन करना पड़ता है। बाह्य रूप से हम चाहे कितने ही समर्थ क्यों न दिखाई दें, यदि हमारे जीवन का आधार धर्म नहीं है तो हमारी शक्ति स्थायी नहीं हो सकती।भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य उपदेश प्रारम्भ होने से पूर्व यह प्रसंग हमें मानव-मन की वास्तविक स्थिति से परिचित कराता है।

|९|

उत्साह की ऊँचाइयाँ और अवसाद की गहराइयाँ: बाइपोलर विकार की कहानी

मनुष्य का जीवन सुख और दुःख, हर्ष और विषाद, आशा और निराशा का संगम है। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसने अपने जीवन में प्रसन्नता और दुःख दोनों का अनुभव न किया हो। परिस्थितियों के अनुसार मन का प्रसन्न या दुःखी होना स्वाभाविक है। किंतु जब मनोदशा में होने वाले परिवर्तन अत्यधिक तीव्र, असामान्य तथा लंबे समय तक बने रहने लगें और व्यक्ति के विचार, व्यवहार, संबंध तथा दैनिक जीवन को गम्भीर रूप से प्रभावित करने लगें, तब यह केवल स्वभाव का परिवर्तन न होकर मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित एक विकार हो सकता है। ऐसा ही एक विकार है—बाइपोलर विकार (Bipolar Disorder)। आधुनिक मनोविज्ञान में इसे मनोदशा संबंधी एक प्रमुख विकार माना गया है। इसमें व्यक्ति कभी अत्यधिक उत्साह, ऊर्जा और आत्मविश्वास का अनुभव करता है और कभी गहन उदासी, निराशा तथा शून्यता में डूब जाता है। इन दोनों अवस्थाओं के बीच का अंतर इतना अधिक होता है कि व्यक्ति के लिए सामान्य जीवन जीना कठिन हो सकता है। भारतीय दृष्टिकोण से देखें तो मन की अस्थिरता मनुष्य के दुःखों का एक प्रमुख कारणमानी गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि मन अत्यन्त चंचल है। जब यह संतुलित रहता है तब जीवन में शान्ति आती है और जब यह असंतुलित हो जाता है तब अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। बाइपोलर विकार इसी मानसिक असंतुलन का एक गंभीर रूप है।

बाइपोलर विकार क्या है?

'बाइपोलर' शब्द का अर्थ है—दो ध्रुव। इस विकार में व्यक्ति की मनोदशा दो विपरीत अवस्थाओं के बीच घूमती रहती है। एक अवस्था को **मेनिया** (उन्माद अथवा अत्यधिक उत्तेजना) और दूसरी अवस्था को **डिप्रेशन** (अवसाद अथवा गहन विषाद) कहा जाता है। सामान्य मनुष्य भी कभी प्रसन्न और कभी दुःखी होता है, परन्तु बाइपोलर विकार में ये परिवर्तन अत्यधिक तीव्र होते हैं। कभी व्यक्ति असाधारण उत्साह और आत्मविश्वास से भर जाता है, तो कभी वह इतना निराश हो जाता है कि जीवन का कोई उद्देश्य दिखाई नहीं देता। यह केवल मानसिक कमजोरी नहीं है और न ही इच्छाशक्ति की कमी का परिणाम है। यह मस्तिष्क की कार्यप्रणाली, आनुवंशिक प्रवृत्तियों तथा अनेक जैविक एवं पर्यावरणीयकारणों से जुड़ी एक जटिल स्थिति है।

बाइपोलर विकार के प्रमुख प्रकार

बाइपोलर विकार कई प्रकार के हो सकते है।

१. बाइपोलर–I विकार

इस प्रकार में मेनिक अवस्था अत्यधिक तीव्र होती है। कई बार व्यक्ति का व्यवहार इतना असामान्य हो जाता है कि उसे चिकित्सकीय देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। अवसाद की अवस्था हो भी सकती है और नहीं भी।

२. बाइपोलर–II विकार

इस प्रकार में मेनिया अपेक्षाकृत हल्की होती है, जिसे हाइपोमेनिया कहा जाता है। किन्तु अवसाद की अवस्था गहरी और लंबे समय तक रहने वाली हो सकती है।

३. साइक्लोथाइमिक विकार

इसमें व्यक्ति बार-बार मनोदशा के उतार-चढ़ाव का अनुभव करता है, किंतु उनकी तीव्रता अपेक्षाकृत कम होती है। फिर भी यह जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है।

मेनिक अवस्था के लक्षण

मेनिया की अवस्था में व्यक्ति अत्यधिक प्रसन्न, उत्साहित और ऊर्जावान दिखाई देता है। प्रारम्भ में यह स्थिति सुखद प्रतीत हो सकती है, परन्तु धीरे-धीरे यह व्यक्ति के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति—

- अत्यधिक प्रसन्न या उत्साहित रहता है।
- बहुत कम सोता है, फिर भी थकान अनुभव नहीं करता।
- बहुत तेज गति से बोलता है।
- अनेक योजनाएँ एक साथ बनाता है।
- स्वयं को असाधारण रूप से प्रतिभाशाली या शक्तिशाली समझ सकता है।
- बिना सोचे-समझे धन खर्च कर सकता है।
- जोखिमपूर्ण कार्यों में संलग्न हो सकता है।
- क्रोध या चिड़चिड़ापन भी प्रदर्शित कर सकता है।

कई बार व्यक्ति को यह अनुभव होता है कि वह कोई विशेष कार्य करने के लिए ही जन्मा है। उसकी आत्मधारणा वास्तविकता से दूर हो सकती है।

अवसाद की अवस्था

मेनिया के विपरीत अवसाद की अवस्था अत्यन्त कष्टदायक होती है। इस समय व्यक्ति—

- निरन्तर उदासी अनुभव करता है।
- जीवन में रुचि खो देता है।
- स्वयं को असफल और निरर्थक समझ सकता है।
- अत्यधिक थकान अनुभव करता है।
- एकाग्रता में कठिनाई महसूस करता है।
- कम या अधिक सो सकता है।
- भोजन की आदतों में परिवर्तन आ सकता है।
- भविष्य के प्रति निराश हो सकता है।

गंभीर स्थिति में व्यक्ति आत्महत्या के विचार भी कर सकता है। ऐसी परिस्थिति में तत्काल विशेषज्ञ सहायता लेना आवश्यक होता है।

दैनिक जीवन पर प्रभाव

बाइपोलर विकार केवल व्यक्ति की भावनाओं को ही नहीं, बल्कि उसके संपूर्ण जीवन को प्रभावित करता है।

पारिवारिक जीवन

मनोदशा में तीव्र परिवर्तन के कारण परिवार के सदस्यों के लिए व्यक्ति को समझना कठिन हो सकता है। कभी वह अत्यधिक उत्साही और मिलनसार होता है, तो कभी पूर्णतः एकाकी और उदास। इससे पति-पत्नी, माता-पिता, बच्चों तथा अन्य संबंधियों के साथ तनाव उत्पन्न हो सकता है।

सामाजिक जीवन

मेनिया के समय व्यक्ति बहुत अधिक बोल सकता है, दूसरों की बात काट सकता है या असामान्य आत्मविश्वास प्रदर्शित कर सकता है। दूसरी ओर अवसाद की अवस्था में वह लोगों से मिलना-जुलना बंद कर सकता है। इस प्रकार सामाजिक संबंध प्रभावित हो सकते हैं।

कार्य और शिक्षा

कार्यस्थल पर निर्णय लेने की क्षमता प्रभावित हो सकती है। कभी व्यक्ति अत्यधिक जोखिम उठाता है और कभी सामान्य कार्य भी पूरा नहीं कर पाता। विद्यार्थियों में अध्ययन और एकाग्रता प्रभावित हो सकती है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मानव इतिहास में इस विकार का उल्लेख बहुत प्राचीन काल से मिलता है। यूनान के प्रसिद्ध चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स ने लगभग 400 ईसा पूर्व अत्यधिक उत्साह और गहन उदासी की अवस्थाओं का वर्णन किया था। उन्होंने इन्हें मानव-मन की विशेष स्थितियों के रूप में पहचाना। उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांसीसी मनोचिकित्सक जीन-पियरे फालरेट ने मनोदशाके चक्रीय परिवर्तनों का अध्ययन किया और इसे "सर्कुलर इनसैनिटी" नाम दिया। बाद में इसे "मैनिक-डिप्रेसिव इलनेस" कहा गया और आधुनिक चिकित्सा में "बाइपोलर डिसऑर्डर" नाम प्रचलित हुआ। इस इतिहास से स्पष्ट है कि यह कोई आधुनिक समस्या नहीं है, बल्कि प्राचीन काल से मानव समाज में विद्यमान रही है।

प्रसिद्ध व्यक्तित्व और बाइपोलर विकार

इतिहास में अनेक प्रतिभाशाली व्यक्तियों के विषय में माना जाता है कि वे मनोदशा संबंधी गंभीर समस्याओं से जूझते रहे।

विन्सेंट वैन गॉग

विश्वप्रसिद्ध चित्रकार वैन गॉग अपनी भावनात्मक गहराई और अद्भुत चित्रकला के लिए प्रसिद्ध हैं। माना जाता है कि उन्होंने मानसिक संघर्षों का सामना किया।

लुडविग वैन बीथोवेन

महान संगीतकार बीथोवेन ने अनेक व्यक्तिगत कठिनाइयों के बीच ऐसी रचनाएँ कीं जो आज भी विश्वभर में आदरपूर्वक सुनी जाती हैं।

वर्जीनिया वूल्फ

प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखिका वर्जीनिया वूल्फ ने मानव-मन की जटिलताओं का अत्यन्त संवेदनशील चित्रण किया।

इन उदाहरणों से यह शिक्षा मिलती है कि मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ व्यक्ति की प्रतिभा को समाप्त नहीं करतीं। उचित सहायता और उपचार से व्यक्ति महान उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकता है।

उपचार और प्रबंधन

बाइपोलर विकार का उपचार सम्भव है। यद्यपि यह दीर्घकालिक स्थिति हो सकती है, तथापि उचित देखभाल से व्यक्ति सामान्य और सार्थक जीवन जी सकता है।

१. औषधि-चिकित्सा

मनोचिकित्सक रोग की अवस्था के अनुसार औषधियाँ देते हैं। इनका उद्देश्य मनोदशा को स्थिर रखना और लक्षणों की तीव्रता को कम करना होता है।

२. मनोचिकित्सकीय परामर्श

परामर्श और मनोचिकित्सा रोगी को अपने विचारों और भावनाओं को समझने में सहायता प्रदान करते हैं। कॉग्निटिव बिहेवियरल थेरेपी (CBT) अनेक रोगियों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है।

३. पारिवारिक सहयोग

परिवार का प्रेम, धैर्य और समझ रोगी के लिए अमूल्य सहायता है। आलोचना और उपेक्षा के स्थान पर सहानुभूति और सहयोग का वातावरण अधिक लाभकारी होता है।

योग और ध्यान की भूमिका

भारतीय संस्कृति में मन, शरीर और आत्मा के संतुलन को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। योग और ध्यान मानसिक शान्ति प्राप्त करने के प्रभावी साधन माने गए हैं।

योग

योग शरीर और मन के बीच सामंजस्य स्थापित करने में सहायता करता है।

कुछ उपयोगी आसन—

- ताड़ासन
- शवासन
- बालासन
- वज्रासन

इनसे तनाव कम करने और मानसिक शांति प्राप्त करने में सहायता मिल सकती है।

प्राणायाम

श्वास का मन से गहरा संबंध है। जब श्वास संतुलित होती है, तब मन भी अपेक्षाकृत शांत रहता है।

विशेष रूप से—

- अनुलोम-विलोम
- भ्रामरी
- गहरी श्वास का अभ्यास

मानसिक तनाव कम करने में सहायक माने जाते हैं।

ध्यान

ध्यान मन को वर्तमान क्षण में स्थिर करना सिखाता है।

नियमित ध्यान से—

- एकाग्रता बढ़ती है।

- नकारात्मक विचार कम हो सकते हैं।
- आत्म-जागरूकता बढ़ती है।
- मानसिक शांति का अनुभव होता है।

यह स्मरणीय है कि योग और ध्यान चिकित्सा का विकल्प नहीं, बल्कि उसके पूरक साधन हैं। इन्हें चिकित्सकीय परामर्श के साथ अपनाना चाहिए।

योगिक जीवनशैली

मानसिक स्वास्थ्य के लिए अनुशासित जीवन अत्यन्त आवश्यक है।

- समय पर सोना और जागना।
- सात्त्विक एवं पौष्टिक भोजन करना।
- नशीले पदार्थों से दूर रहना।
- नियमित व्यायाम करना।
- सकारात्मक संगति रखना।
- ईश्वर-चिंतन एवं प्रार्थना का अभ्यास करना।

ये सभी उपाय मन को संतुलित रखने में सहायता कर सकते हैं। बाइपोलर विकार एक जटिल किन्तु प्रबंधनीय मानसिक स्वास्थ्य स्थिति है। यह व्यक्ति के मन, व्यवहार, संबंधों तथा जीवन की दिशा को प्रभावित कर सकती है। परन्तु उचित चिकित्सा, पारिवारिक सहयोग, आत्म-अनुशासन तथा संतुलित जीवनशैली के द्वारा इसके प्रभावों को काफी सीमा तक नियंत्रित किया जा सकताहै। भारतीय दर्शन हमें सिखाता हैकि जीवन का वास्तविक आधार संतुलन है। जिस प्रकार वीणा का तार न अधिक ढीला होना चाहिए और न अधिक कसा हुआ, उसी प्रकार मन का संतुलन भी आवश्यक है। अत्यधिक हर्ष और अत्यधिक विषाद—दोनों ही मन की शान्ति को भंग कर सकते हैं। अतः मानसिक रोगों को लज्जा या कलंक का विषय न मानकर करुणा, वैज्ञानिक दृष्टि औरसमझदारी के साथ देखना चाहिए। सही जानकारी, समय पर उपचार, योग, ध्यान और ईश्वर में श्रद्धा के सहारे व्यक्ति जीवन की कठिन परिस्थितियों का सामना कर सकता है। मानव जीवन का उद्देश्य केवल रोगों से मुक्त होना नहीं, बल्कि आन्तरिक संतुलन, शान्ति और आत्मोन्नति प्राप्त करना है। जब मन संतुलित होता है, तब जीवन में प्रकाशआता है; और जब ज्ञान, उपचार तथा आत्मसंयम का संगम होता है, तब आशा का नया द्वार खुलता है।

जब प्रोमेथियस ने मानवता को अग्नि का उपहार दिया

प्रोमेथियस की कथा प्राचीन यूनान (ग्रीस) की प्रसिद्ध पौराणिक कथाओं में से एक है। प्राचीन यूनान दक्षिण-पूर्वी यूरोप में स्थित था, जिसे आज ग्रीस के नाम से जाना जाता है। एथेंस जैसे प्रसिद्ध नगर इसी क्षेत्र में स्थित हैं। यूनानी मान्यताओं के अनुसार देवता माउंट ओलिम्पस नामक पर्वत पर निवास करते थे, जो ग्रीस का सबसे ऊँचा पर्वत है।

कथा के अनुसार, प्रोमेथियस ने देखा कि प्रारंभिक मानव अज्ञानता और कठिनाइयों में जीवन बिता रहे थे। उनके पास न तो अग्नि थी और न ही उन्नति के साधन। मानवता की सहायता करने के लिए प्रोमेथियस ने देवताओं से अग्नि चुराकर मनुष्यों को दे दी। अग्नि प्राप्त होने से लोगों ने ज्ञान, कला और सभ्यता का विकास किया।

देवताओं के राजा ज़्यूस को यह कार्य पसंद नहीं आया। क्रोधित होकर उसने प्रोमेथियस को कठोर दंड दिया और उसे एक दूरस्थ पर्वत से जंजीरों में बाँध दिया। आज प्रोमेथियस त्याग, साहस और मानव प्रगति के प्रतीक के रूप में याद किए जाते हैं।

|१०|

ब्लॉकचेन का चमत्कार: डिजिटल युग में डेटा सुरक्षा का विज्ञान

आज का युग सूचना और प्रौद्योगिकी का युग है। हमारे बैंक खाते, पहचान-पत्र, चिकित्सा अभिलेख, शैक्षणिक प्रमाण-पत्र, व्यापारिक लेन-देन और यहाँ तक कि हमारी व्यक्तिगत जानकारी भी डिजिटल रूप में संग्रहीत की जा रही है। ऐसे में सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि इस अमूल्य जानकारी को सुरक्षित कैसे रखा जाए? यदि कोई व्यक्ति इन अभिलेखों में छेड़छाड़ कर दे, तो इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। इसी चुनौती का समाधान प्रस्तुत करती है एक आधुनिक तकनीक, जिसे ब्लॉकचेन (Blockchain) कहा जाता है। पिछले कुछ वर्षों में यह शब्द अत्यंत लोकप्रिय हुआ है। यद्यपि इसे सामान्यतः बिटकॉइन और अन्य क्रिप्टोकरेंसी के साथ जोड़ा जाता है, किंतु वास्तव में इसका उपयोग इससे कहीं अधिक व्यापक है। शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, मतदान, भूमि अभिलेख और डिजिटल पहचान जैसे अनेक क्षेत्रों में इसका प्रयोग किया जा रहा है। आइए सरल भाषा में समझें कि ब्लॉकचेन क्या है, यह कैसे कार्य करता है और भविष्य में इसका क्या महत्व हो सकता है।

ब्लॉकचेन क्या है?

कल्पना कीजिए कि किसी विद्यालय में विद्यार्थियों के अंक एक रजिस्टर में लिखे जाते हैं। यदि वह रजिस्टर केवल प्रधानाचार्य के पास हो, तो उसमें परिवर्तन करने की संभावना बनी रहती है। परन्तु यदि उसी रजिस्टर की प्रतिलिपि विद्यालय के प्रत्येक शिक्षक और विद्यार्थी के पास हो, और कोई भी परिवर्तन तभी स्वीकार किया जाए जब सभी उसकी पुष्टिकरें, तो गलत परिवर्तन करना लगभग असंभव हो जाएगा। ब्लॉकचेन इसी सिद्धांत पर कार्य करता है। यह एक ऐसी डिजिटल प्रणाली है जिसमें जानकारी छोटे-छोटे समूहों या ब्लॉकों में संग्रहीत की जाती है। प्रत्येक ब्लॉक अपने पूर्ववर्ती ब्लॉक से जुड़ा रहता है। इस प्रकार ब्लॉकों की एक श्रृंखला बन जाती है, जिसे ब्लॉकचेन कहा जाता है। सरल शब्दों में, ब्लॉकचेन एक साझा डिजिटल बही-खाता (Digital Ledger) है, जिसमें दर्ज जानकारी को आसानी से बदला या मिटाया नहीं जा सकता।

"ब्लॉकचेन" शब्द का अर्थ

इस शब्द को दो भागों में समझा जा सकता है—

ब्लॉक (Block) – जानकारी का एक समूह।

चेन (Chain) – एक-दूसरे से जुड़े हुए ब्लॉक।

अर्थात् जानकारी के अनेक ब्लॉकों की श्रृंखला ही ब्लॉकचेन है।

ब्लॉकचेन कैसे कार्य करता है?

मान लीजिए तीन मित्र हैं—राहुल, रिया और अमन। राहुल रिया को दो चॉकलेट देता है। इसके बाद रिया अमन को एक चॉकलेट देती है। इन दोनों घटनाओं को एक ब्लॉक में दर्ज किया जाता है। जब यह ब्लॉक भर जाता है, तब उसे बंद कर दिया जाता है और नया ब्लॉक बनाया जाता है। नया ब्लॉक अपने पहले वाले ब्लॉक से जुड़ जाता है। इस प्रकार क्रमबनता है—

ब्लॉक 1 → ब्लॉक 2 → ब्लॉक 3 → ब्लॉक 4

यह श्रृंखला लगातार आगे बढ़ती रहती है। यदि कोई व्यक्ति पुराने रिकॉर्ड को बदलने का प्रयास करे, तो पूरी श्रृंखला प्रभावित हो जाएगी और नेटवर्क में उपस्थित अन्य कंप्यूटर तुरंत इस परिवर्तन को पहचान लेंगे।

ब्लॉकचेन की मुख्य विशेषताएँ

ब्लॉकचेन को अन्य डिजिटल प्रणालियों से अलग बनाने वाली कुछ विशिष्ट विशेषताएँ हैं। यही विशेषताएँ इसे सुरक्षित, पारदर्शी और विश्वसनीय बनाती हैं तथा विभिन्न क्षेत्रों में इसके बढ़ते उपयोग का आधार हैं।

1. विकेंद्रीकरण (Decentralization)

सामान्यतः डेटा किसी एक सर्वर या संस्था के पास सुरक्षित रहता है। यदि वह सर्वर खराब हो जाए या हैक हो जाए, तो पूरी प्रणाली प्रभावित हो सकती है। किन्तु ब्लॉकचेन में जानकारी अनेक कंप्यूटरों में वितरित रहती है। इसलिए किसी एक स्थान पर आक्रमण होने से पूरी व्यवस्था नष्ट नहीं होती। इसे ऐसे समझें जैसे किसी पुस्तक की केवल एक प्रति न होकर हजारों प्रतियाँ विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध हों।

2. पारदर्शिता (Transparency)

ब्लॉकचेन में दर्ज जानकारी को नेटवर्क के सदस्य देख सकते हैं। इससे छिपे हुए परिवर्तन या धोखाधड़ी की संभावना कम हो जाती है।

3. सुरक्षा (Security)

ब्लॉकचेन में विशेष गणितीय तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जिन्हें क्रिप्टोग्राफी कहा जाता है। इसके कारण रिकॉर्ड को बदलना अत्यंत कठिन हो जाता है।

4. अपरिवर्तनीयता (Immutability)

एक बार कोई जानकारी ब्लॉकचेन में दर्ज हो जाए, तो उसे हटाना या बदलना लगभग असंभव होता है। यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

ब्लॉक के भीतर क्या होता है?

प्रत्येक ब्लॉक में सामान्यतः तीन मुख्य तत्व होते हैं—

डेटा (Data)

यह वह वास्तविक जानकारी होती है जिसे सुरक्षित रखना है, जैसे लेन-देन का विवरण।

हैश (Hash)

हैश एक विशेष डिजिटल पहचान संख्या होती है। इसे किसी व्यक्ति के अंगूठे के निशान की तरह समझा जा सकता है।

पिछला हैश (Previous Hash)

यह पिछले ब्लॉक की पहचान संख्या होती है, जो दोनों ब्लॉकों को जोड़ती है। इसी कारण पूरी श्रृंखला एक-दूसरे से जुड़ी रहती है।

हैश क्या है?

मान लीजिए आपके पास "RAM" शब्द है। कंप्यूटर इसे एक विशेष कोड में बदल सकता है। यदि "RAM" को बदलकर "RAMA" कर दिया जाए, तो नया कोड पूरी तरह बदल जाएगा। इस प्रकार हैश यह सुनिश्चित करता है कि रिकॉर्ड में कोई परिवर्तन हुआ है या नहीं।

हैश क्या है?

मान लीजिए आपके पास "RAM" शब्द है। कंप्यूटर इसे एक विशेष कोड में बदल सकता है। यदि "RAM" को बदलकर "RAMA" कर दिया जाए, तो नया कोड पूरी तरह बदल जाएगा। इस प्रकार हैश यह सुनिश्चित करता है कि रिकॉर्ड में कोई परिवर्तन हुआ है या नहीं।

ट्रेन का उदाहरण

ब्लॉकचेन को रेलगाड़ी की तरह भी समझा जा सकता है। प्रत्येक डिब्बा एक ब्लॉक है। सभी डिब्बे एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। यदि बीच का कोई डिब्बा निकालने का प्रयास किया जाए, तो पूरी ट्रेन प्रभावित हो जाएगी। ठीक इसी प्रकार किसी ब्लॉक में परिवर्तन करने पर पूरी श्रृंखला पर प्रभाव पड़ता है।

क्रिप्टोकरेंसी और ब्लॉकचेन

जब भी ब्लॉकचेन का नाम आता है, तो बिटकॉइन का उल्लेख अवश्य होता है। बिटकॉइन एक डिजिटल मुद्रा है जो ब्लॉकचेन तकनीक पर आधारित है। सामान्य बैंकिंग प्रणाली में बैंक लेन-देन का रिकॉर्ड रखता है। लेकिन बिटकॉइन जैसी क्रिप्टोकरेंसी में रिकॉर्ड रखने का कार्य

पूरी नेटवर्क प्रणाली करती है। यही कारण है कि इसे विकेंद्रीकृत मुद्रा कहाजाता है। हालाँकि क्रिप्टोकरेंसी ब्लॉकचेन का केवल एक उपयोग है। इसका महत्व इससे कहीं अधिक व्यापक है।

शिक्षा क्षेत्र में उपयोग

कल्पना कीजिए कि किसी विश्वविद्यालय के सभी प्रमाण-पत्र ब्लॉकचेन पर संग्रहीत हों। ऐसी स्थिति में प्रमाण-पत्र नकली नहीं बनाए जा सकते, अंकपत्रों में छेड़छाड़ संभव नहीं होगी और सत्यापन कुछ ही सेकंड में हो सकेगा। इससे शैक्षणिक व्यवस्था अधिक विश्वसनीय बन सकती है।

स्वास्थ्य सेवाओं में उपयोग

आज चिकित्सा अभिलेख अनेक अस्पतालों में बिखरे रहते हैं। यदि रोगी का सम्पूर्ण स्वास्थ्य रिकॉर्ड ब्लॉकचेन पर हो, तो रिपोर्ट सुरक्षित रहेगी, अनधिकृत परिवर्तन नहीं हो सकेंगे और विभिन्न चिकित्सक आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इससे उपचार की गुणवत्ता बेहतर हो सकती है।

मतदान प्रणाली में उपयोग

लोकतंत्र की सफलता निष्पक्ष मतदान पर निर्भर करती है। यदि मतदान प्रक्रिया ब्लॉकचेन पर आधारित हो तो प्रत्येक वोट सुरक्षित रूप से दर्ज होगा, वोट बदलना संभव नहीं होगा और परिणाम अधिक विश्वसनीय बनेंगे। विश्व के कई देशों में इस दिशा में प्रयोग चल रहे हैं।

भूमि एवं संपत्ति अभिलेख

भूमि विवाद भारत सहित अनेक देशों में एक गंभीर समस्या है। यदि भूमि अभिलेख ब्लॉकचेन पर दर्ज किए जाएँ तो नकली दस्तावेज़ों की संभावना घटेगी, स्वामित्व स्पष्ट रहेगा और खरीद-बिक्री प्रक्रिया सरल होगी।

बैंकिंग एवं वित्तीय क्षेत्र

बैंकिंग क्षेत्र में ब्लॉकचेन कई समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है जैसे अंतरराष्ट्रीय धन हस्तांतरण तेज़ हो सकता है, रिकॉर्ड अधिक सुरक्षित बन सकते हैं, धोखाधड़ी की घटनाएँ कम हो सकती हैं और लेन-देन की लागत घट सकती है।

आपूर्ति श्रृंखला (Supply Chain)

जब हम कोई वस्तु खरीदते हैं, तो अक्सर यह जानना कठिन होता है कि वह कहाँ बनी और कैसे हमारे पास पहुँची। ब्लॉकचेन की सहायता से किसी वस्तु की सम्पूर्ण यात्रा का रिकॉर्ड रखा जा सकता है—

कारखाना → गोदाम → परिवहन → दुकान → ग्राहक

इससे नकली वस्तुओं की पहचान करना आसान हो जाता है।

डिजिटल पहचान का भविष्य

भविष्य में हमारी डिजिटल पहचान भी ब्लॉकचेन पर आधारित हो सकती है। इसके बहुत लाभ होंगे जैसे पहचान की चोरी कम होगी, दस्तावेज़ सुरक्षित रहेंगे और सत्यापन प्रक्रिया सरल होगी।

ब्लॉकचेन के लाभ

1. अत्यधिक सुरक्षा।
2. पारदर्शिता।
3. रिकॉर्ड में छेड़छाड़ कठिन।
4. बिचौलियों की आवश्यकता कम।
5. भरोसेमंद प्रणाली।
6. तेज़ सत्यापन।
7. वैश्विक स्तर पर उपयोग की क्षमता।

ब्लॉकचेन की चुनौतियाँ

यद्यपि यह तकनीक अत्यंत उपयोगी है, फिर भी कुछ चुनौतियाँ हैं—

1. जटिलता

सामान्य व्यक्ति के लिए इसकी कार्यप्रणाली समझना

कठिन हो सकता है।

2. ऊर्जा की खपत

कुछ ब्लॉकचेन नेटवर्क बड़ी मात्रा में विद्युत ऊर्जा का उपयोग करते हैं।

3. गति की सीमा

बहुत बड़े नेटवर्क में कभी-कभी लेन-देन की प्रक्रिया धीमी हो सकती है।

4. कानूनी एवं नियामकीय प्रश्न

अनेक देशों में अभी इसके लिए स्पष्ट नियम विकसित किए जा रहे हैं।

भारतीय दृष्टिकोण से ब्लॉकचेन

भारत में डिजिटल इंडिया अभियान के अंतर्गत विभिन्न सरकारी और निजी संस्थाएँ ब्लॉकचेन तकनीक पर कार्य कर रही हैं। भूमि अभिलेख, आपूर्ति श्रृंखला, बैंकिंग और शिक्षा जैसे क्षेत्रों में इसके प्रयोग की संभावनाएँ निरंतर बढ़ रही हैं।

यदि इसका विवेकपूर्ण उपयोग किया जाए, तो यह प्रशासन को अधिक पारदर्शी और विश्वसनीय बना सकती है।ब्लॉकचेन केवल एक नई तकनीक नहीं, बल्कि विश्वास स्थापित करने की एक नवीन व्यवस्था है। जिस प्रकार प्राचीन भारत में लेखा-जोखा रखने के लिए बहियाँ और अभिलेखों का उपयोग किया जाता था, उसी प्रकार डिजिटल युग मेंब्लॉकचेन एक सुरक्षित और विश्वसनीय अभिलेख प्रणाली के रूप में उभर रही है। भविष्य में बैंकिंग, शिक्षा, स्वास्थ्य, मतदान, भूमि प्रबंधन और डिजिटल पहचान जैसे अनेक क्षेत्रों में इसका प्रभाव देखने को मिल सकता है। यद्यपि यह तकनीक अभी विकास की अवस्था में है, फिर भी यह स्पष्ट है कि आने वाले वर्षों में ब्लॉकचेन हमारे डिजिटल जीवन का एकमहत्वपूर्ण अंग बनने जा रही है।ज्ञान, पारदर्शिता और सुरक्षा—इन तीनों का समन्वय ही ब्लॉकचेन का वास्तविक चमत्कार है।

सातोशी नाकामोटो : ब्लॉकचेन प्रौद्योगिकी के प्रणेता

सातोशी नाकामोटो वह अज्ञात व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह है, जिसने ब्लॉकचेन प्रौद्योगिकी का विकास किया तथा विश्व की प्रथम क्रिप्टो मुद्रा बिटकॉइन का निर्माण किया। सन् २००८ ई० में उन्होंने "Bitcoin: A Peer-to-Peer Electronic Cash System" नामक शोध-पत्र प्रकाशित किया, जिसमें ऐसी डिजिटल मुद्रा-व्यवस्था का वर्णन किया गया, जिसके माध्यम से लोग बिना किसी बैंक अथवा मध्यस्थ संस्था के प्रत्यक्ष रूप से धन का लेन-देन कर सकते हैं।

सन् २००९ ई० में उन्होंने बिटकॉइन का शुभारम्भ किया तथा प्रथम 'जेनेसिस ब्लॉक' का निर्माण करके ब्लॉकचेन का व्यावहारिक उपयोग आरम्भ किया। कुछ समय तक वे अन्य विकासकर्ताओं के साथ कार्य करते रहे, परन्तु लगभग सन् २०१० ई० के पश्चात् सार्वजनिक जीवन से विलुप्त हो गए।

आज भी उनकी वास्तविक पहचान रहस्य बनी हुई है। उनकी इस अभिनव खोज ने धन तथा आँकड़ों के सुरक्षित, पारदर्शी और विकेन्द्रीकृत प्रबन्धन का नया मार्ग प्रशस्त किया है, जिसका लाभ आज वित्त सहित अनेक क्षेत्रों में प्राप्त हो रहा है।

“सनातन प्रवाह ट्रस्ट”
A-306, ब्रेन एवलॉन,
चिन्नप्पनहल्ली मेन रोड,
बेंगलुरु – 560048

अधिक जानकारी के लिए sanatanpravah.org पर क्लिक करें

SANATAN PRAVAH TRUST